UNIVERSAL LIBRARY
OU_178419
UNIVERSAL LIBRARY

OUP—881—5-8-74—15,000.

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H83.1/P91ch Accession No. G.H. 2560

Author प्रसाद

Title छाया

This book should be returned on or before the date last marked below.

छाया

रत्नच्छाया व्यतिकर इव प्रेक्ष्यमेतत्पुरस्तात्

— मेघदूते

जयशंकर 'प्रसाद'

पुस्तक - भंडार

पटना-४

१॥)

प्रकाशक
पुस्तक - भंडार
पटना - ४

मुद्रक
के० कृ० पावगी
हितचिन्तक प्रेस,
रामघाट, बनारस-१.

उ प हा र

'छाया'

[प्रथम संस्करण]

पर

सम्मान्य सम्मतियाँ

'छाया' के गल्प छोटे-छोटे होने पर भी पाठक को रुला-रुलाकर शिक्षा देनेवाले हैं। वे हृदय पर अपूर्व भावों की छाया डालते हैं।

(१३-३-१४ के पत्र में) —लोचन प्रसाद पांडेय

'छाया' में पाँच छोटी-छोटी कहानियाँ हैं। ये कहानियाँ यथार्थ ही मानव-हृदय पर एक विचित्र छाया डालती हैं। रचना प्रशंसा-योग्य है। 'मदन-मृणालिनी' नामक गल्प के लिखने में लेखक ने जिन भावों, कल्पनाओं एवं प्राकृतिकता-पूरित, मनोहरता-मय, विचित्रता-वेष्टित स्वाभाविक चेष्टाओं से काम लिया है, वे सर्वथा लेखक की उदात्त मानसिक शक्ति की परिचायिका हैं। 'छाया' उन पुस्तकों में एक है, जो हिन्दी-भाषा के शून्य पड़े हुए साहित्य-विभाग की पूर्ति के सहायक हैं।

—प्रभा, खंडवा (मई, १९१३)

'छाया' में सुयोग्य लेखक ने भिन्न-भिन्न घटनाओं के छाया-चित्र खींचे हैं। पुस्तक मनोरञ्जक है। पढ़ने में चित्त लगता है। कई चित्र और कल्पनाएँ तो बहुत ही अच्छी हैं। 'छाया' उपन्यास-प्रेमी और कल्पना-प्रेमी पाठकों के काम की चीज है।

—भारतोदय (वर्ष ४, अङ्क २)

आख्यायिकाएँ मनोहर हैं। उनके पढ़ने में जी लगता है।

—शिक्षा, पटना (२२ मई, १९१३)

'छाया' की कहानियाँ कुछ ऐतिहासिक हैं और कुछ कल्पित। सामाजिक कुरीतियों पर कटाक्ष और सुधार के उपायों का भी कथामुख में उल्लेख है। ऋतु, समय, नैसर्गिक दृश्य, ग्राम और जनपदों के वर्णन में लेखक ने विशेष कुशलता दिखाई है।

—नागरी-प्रचारक, लखनऊ (भाग ७, अंक ६)

'छाया' की कहानियाँ पढ़ने योग्य हैं। पर इनमें 'चन्दा' और 'रसिया बालम' छोटी होने पर भी ज्यादा अच्छी हैं।

—मनोरंजन, आरा (भाग ११, संख्या ७)

हमारे तीन अनूठे नवीन काव्यग्रंथ

१—रस-कलस

रचयिता—

कविवर पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' साहित्यरत्न

इसमें साहित्य के नवरसों पर 'हरिऔध' जी की व्रजभाषा की कविताएँ संग्रहीत हैं। साहित्य के अन्य रस-ग्रन्थों से इसमें विशेषता यह है कि रसों के अनेक नवीन भेद भी नये ढंग के उदाहरणों के साथ बताये गये हैं। कविताओं में नई कल्पना, नई सूझ, नई भावना और नई उक्ति देखकर कवि की अलौकिक प्रतिभा पर आश्चर्य होता है। इसकी पाण्डित्यपूर्ण भूमिका ही सैकड़ों पेज की है, और केवल पुस्तक लगभग ४०० पृष्ठों में समाप्त हुई है। यह हिन्दी-जगत् में हलचल मचानेवाली पुस्तक है।

२—मोती की लड़ी

सम्पादक—श्रीरामलोचन शर्मा 'कंटक' बी. ए.

इसमें हिन्दी, उर्दू, अँगरेजी, संस्कृत आदि भाषाओं के प्रसिद्ध कवियों की 'आँसू'-सम्बन्धी उत्तमोत्तम सरस कविताओं का सुसम्पादित संग्रह है। 'आँसू' पर ऐसी-ऐसी मीठी-अनूठी सूक्तियाँ हैं कि पढ़कर सहृदय-हृदय साहित्य-रसिकों का चित्त मुग्ध हुए

बिना न रहेगा। यह प्रेमिकों और प्रेमिकाओं, नवयुवकों और नवयुवतियों, संयोगियों और वियोगियों, भगवद्भक्तों और सौन्दर्यो-पासकों तथा काव्यानुरागियों और स्वदेश-सेवकों के चित्त को पर-वश, गद्गद्, विह्वल एवं विभोर करनेवाली अपूर्व पुस्तक है। यदि आप इसे पढ़ते-पढ़ते अविरल आनन्दाश्रु-धारा बहाना चाहते हैं—कलेजा थामकर मन-ही-मन तड़पना चाहते हैं—करुणा के खरस्रोत में प्रवाहित होकर जीवन की घड़ियों को सरस बनाना चाहते हैं—भक्ति की गंगा में नहाकर मानव-जीवन को चरितार्थ करना चाहते हैं—पर-दुःख-कातरता-वश दयार्द्र-चित्त हो अपने अन्तस्तल को शीतल करना चाहते हैं, तो इस पुस्तक को अवश्य पढ़िये। पृष्ठ-संख्या लगभग ४५०; शीघ्र प्रकाशित होगी।

३—सुधा-सरोवर

रचयिता—श्रीदामोदरसहायसिंह 'कविकिंकर'

इसमें भिन्न-भिन्न सुरुचिपूर्ण सरस विषयों पर अत्यत ललित भावमयी ब्रजभाषा-कविताएँ हैं, जिनकी प्रशंसा स्वनामधन्य ब्रजभाषाचार्य कविवर 'रत्नाकर' जी ने की है; और इसकी भूमिका कविवर पं० रामनरेश त्रिपाठी जी ने लिखी है, जिसमें इसको खूब सहारा है। सजिल्द, सचित्र, मूल्य १॥)

पुस्तक-भंडार, पटना-४

प्रकाशक का वक्तव्य

श्रीयुत बाबू जयशंकर 'प्रसाद' जी हिन्दी के स्वनामधन्य सुकवि और यशोधन सुलेखक हैं। साहित्य-संसार में उनका शुभ नाम स्वतः देदीप्यमान हो रहा है। उनकी सर्वतोमुखी प्रतिभा और सुधामुखी लेखनी का प्रसाद पाकर हिन्दी विशेष गौरवान्वित हुई है। कविता, नाटक, कहानी, इतिहास आदि अनेक क्षेत्रों में 'प्रसाद' जी की कीर्त्ति-लता लहलहा रही है। कविता और कहानी के क्षेत्र में तो उन्होंने अभिनव युगान्तर उपस्थित कर दिया है। नाटकों की रचना में भी वह अप्रतिम हैं। उनकी प्रायः सभी रचनाएँ बड़े उच्चकोटि की और अतुलनीय हैं। यह पुस्तक 'प्रसाद' जी की आरम्भिक रचनाओं का संग्रह है। इसके प्रथम संस्करण में केवल पाँच ही कहानियाँ थीं—तानसेन, चन्दा, ग्राम, रसिया बालम, मदन-मृणालिनी। और, उस समय यह साहित्य-सम्मेलन-परीक्षा की पाठ्य-पुस्तक भी थी। साथ ही, हिन्दी में 'सबसे पहला कहानी-संग्रह' होने का सौभाग्य भी इसीको प्राप्त है। परन्तु इसके द्वितीय और तृतीय संस्करण में ये ग्यारहो कहानियाँ थीं, जो इस चतुर्थ संस्करण में भी हैं। तृतीय संस्करण में 'प्रसाद' जी ने इन कहानियों पर फिर-से नया रंग चढ़ा दिया है। बहुत दिनों पर ये कहानियाँ नवीन कलेवर में परिवर्त्तित होकर उत्कंठित कहानी-प्रेमियों के सामने आई हैं। आशा है, वे इन्हें परिष्कृत रूप में पाकर प्रसन्न होंगे। इन कहानियों के विषय में विशेष कहने के अधिकारी हम नहीं हैं। हम तो इस पुस्तक को प्रकाशित करके ही अत्यन्त गौरव एवं सन्तोष अनुभव करते हैं।

विषय - सूची

[संवत् १९६९ से १९७५ तक की कहानियों का संग्रह]

तानसेन	...	...	१
चन्दा	...	...	११
ग्राम	...	...	२५
रसिया बालम	...	...	३५
शरणागत	...	...	४७
सिकन्दर की शपथ	...	...	५७
चित्तौर-उद्धार	...	...	६७
अशोक	...	...	७७
गुलाम	...	...	९५
जहाँनारा	...	...	१०९
मदन-मृणालिनी	...	...	११९

१

यह छोटा-सा सरोवर भी क्या ही सुन्दर है, सुहावने आम और जामुन के वृक्ष चारों ओर से इसे घेरे हुए हैं। दूर से देखने में यहाँ केवल एक बड़ा-सा वृक्षों का झुरमुट दिखाई देता है, पर इसका स्वच्छ जल अपने सौन्दर्य को ऊँचे ढूहों में छिपाये हुए है। कठोर-हृदया धरणी के वक्षस्थल में यह छोटा-सा करुणा-कुण्ड, बड़ी सावधानी से, प्रकृति ने छिपा रक्खा है।

संध्या हो चली है। विहँग-कुल कोमल कल-रव करते हुए अपने-अपने नीड़ की ओर लौटने लगे हैं। अन्धकार अपना आगमन सूचित कराता हुआ वृक्षों के ऊँची टहनियों के कोमल किसलयों को धुँधले रङ्ग का बना रहा है। पर सूर्य की अन्तिम किरणें अभी अपना स्थान नहीं छोड़ना चाहती हैं। वे हवा के झोकों से हटाई जाने पर भी अन्धकार के अधिकार का विरोध करती हुई सूर्यदेव की उँगलियों की तरह हिल रही हैं।

संध्या हो गई। कोकिल बोल उठा। एक सुन्दर कोमल-कण्ठ से निकली हुई रसीली तान ने उसे भी चुप कर दिया। मनोहर-स्वर-लहरी उस सरोवर-तीर से उठकर तट के सब वृक्षों को गुंजरित करने लगी। मधुर-मलयानिल-ताड़ित जल-लहरी उस स्वर के ताल पर नाचने लगी। हर-एक पत्ता ताल देने लगा। अद्भुत आनन्द का समावेश था। शान्ति का नैसर्गिक राज्य उस छोटी रमणीय भूमि में मानों जमकर बैठ गया था।

यह आनन्द-कानन अपना मनोहर स्वरूप एक पथिक से छिपा न सका, क्योंकि वह प्यासा था। जल की उसे आवश्यकता थी। उसका घोड़ा, जो बड़ी शीघ्रता से आ रहा था, रुका, और वह उतर पड़ा। पथिक बड़े वेग से अश्व से उतरा, पर वह भी स्तब्ध होकर खड़ा हो गया; क्योंकि उसको भी उसी स्वर-लहरी ने मंत्र-मुग्ध फणी की तरह बना दिया। मृगया-शील पथिक क्लान्त था— वृक्ष के सहारे खड़ा हो गया। थोड़ी देर तक वह अपने को भूल गया। जब स्वर-लहरी ठहरी, तब उसकी निद्रा भी टूटी। युवक सारे श्रम को भूल गया, उसके अङ्ग में एक अद्भुत स्फूर्ति मालूम हुई। वह, जहाँ से स्वर सुनाई पड़ता था, उसी ओर चला। जाकर देखा, एक युवक खड़ा होकर उस अन्धकार-रंजित जल की ओर देख रहा है।

पथिक ने उत्साह के साथ जाकर उस युवक के कन्धे को पकड़कर हिलाया। युवक का ध्यान टूटा। उसने पलटकर देखा।

२

पथिक का वीर-वेश भी सुन्दर था। उसकी खड़ी मूँछें उसके स्वाभाविक गर्व को तनकर जता रही थीं। युवक को उसके इस असभ्य बर्ताव पर क्रोध तो आया, पर कुछ सोचकर वह चुप हो रहा। और, इधर पथिक ने सरल स्वर से एक छोटा-सा प्रश्न कर दिया—क्यों भई, तुम्हारा नाम क्या है?

युवक ने उत्तर दिया—रामप्रसाद।

पथिक—यहाँ कहाँ रहते हो? अगर बाहर के रहनेवाले हो, तो चलो, हमारे घर पर आज ठहरो।

युवक कुछ न बोला, किन्तु उसने एक स्वीकार-सूचक इङ्गित किया। पथिक और युवक, दोनों, अश्व के समीप आये। पथिक ने उसकी लगाम हाथ में ले ली। दोनों पैदल ही सड़क की ओर बढ़े।

दोनों एक विशाल दुर्ग के फाटक पर पहुँचे और उसमें प्रवेश किया। द्वार के रक्षकों ने उठकर आदर के साथ उस पथिक को अभिवादन किया। एक ने बढ़कर घोड़ा थाम लिया। अब दोनों ने बड़े दालानों और अमराइयों को पार करके एक छोटे-से पाईं-बाग़ में प्रवेश किया।

रामप्रसाद चकित था, उसे यह नहीं ज्ञात होता था कि वह किसके सङ्ग कहाँ जा रहा है। हाँ, यह उसे अवश्य प्रतीत हो गया कि यह पथिक इस दुर्ग का कोई प्रधान पुरुष है।

पाईं-बाग़ में बीचोबीच एक चबूतरा था, जो संगमरमर का बना था। छोटी-छोटी सीढ़ियाँ चढ़कर दोनों उसपर पहुँचे। थोड़ी देर में एक दासी पानदान और दूसरी वारुणी की बोतल लिये हुए आ पहुँची।

पथिक, जिसे अब हम पथिक न कहेंगे, ग्वालियर-दुर्ग का क़िलेदार था, मुग़ल-सम्राट् अकबर के सरदारों में से था। बिछे हुए पारसी कालीन पर मसनद के सहारे वह बैठ गया। दोनों दासियाँ फिर एक हुक्का ले आईं, और उसे रखकर मसनद के पीछे खड़ी होकर चँवर करने लगीं। एक ने रामप्रसाद की ओर बहुत बचाकर देखा।

युवक सरदार ने थोड़ी-सी वारुणी ली। दो-चार गिलौरी पान की खाकर फिर वह हुक्का खींचने लगा। रामप्रसाद क्या करें, बैठे-बैठे सरदार का मुँह देख रहे थे। सरदार के ईरानी चेहरे पर वारुणी

ने वार्निश का काम दिया। उसका चेहरा चमक उठा। उत्साह से भरकर उसने कहा—रामप्रसाद, कुछ गावो। यह उस दासी की ओर देख रहे थे।

२

रामप्रसाद, सरदार के साथ बहुत मिल गया। उसे अब कहीं भी रोक-टोक नहीं है। उसी पाईं-बाग़ में उसके रहने की जगह है। अपनी खिचड़ी आँच पर चढ़ाकर प्रायः चबूतरे पर आकर गुन-गुनाया करता। ऐसा करने की उसे मनाही नहीं थी। सरदार भी कभी-कभी खड़े होकर बड़े प्रेम से उसे सुनते थे। किन्तु उस गुनगुनाहट ने एक बड़ा बेढब कार्य किया। वह यह कि सरदार-महल की एक नवीना दासी, उस गुनगुनाहट की धुन में, कभी-कभी पान में चूना रखना भूल जाया करती थी, और कभी-कभी मालकिन के 'किताब' माँगने पर 'आफ़ताबा' ले जाकर बड़ी लज्जित होती थी। पर तो भी बरामदे में से उसे एक बार उस चबूतरे की ओर देखना ही पड़ता था।

'रामप्रसाद' को कुछ नहीं—वह जङ्गली जीव था। उसे इस छोटे-से उद्यान में रहना पसन्द नहीं था, पर क्या करे। उसने भी एक कौतुक सोच रक्खा था। जब उसके स्वर में मुग्ध होकर कोई अपने कार्य में च्युत हो जाता, तब उसे बड़ा आनन्द मिलता।

'सरदार' अपने कार्य में व्यस्त रहते थे। उन्हें संध्या को चबूतरे पर बैठकर रामप्रसाद के दो-एक गान सुनने का नशा हो गया था। जिस दिन गाना नहीं सुनते, उस दिन उनको वारुणी में नशा कम हो जाता—उनकी विचित्र दशा हो जाती थी।

रामप्रसाद ने एक दिन अपने पूर्व-परिचित सरोवर पर जाने के लिये छुट्टी माँगी; मिल भी गई।

संध्या को सरदार चबूतरे पर नहीं बैठे, महल में चले गये। उनकी स्त्री ने कहा—आज आप उदास क्यों हैं?

सरदार—रामप्रसाद के गाने में मुझे बड़ा ही सुख मिलता है।

सरदार-पत्नी—क्या आपका रामप्रसाद इतना अच्छा गाता है जो उसके बिना आपको चैन नहीं? मेरी समझ में मेरी बाँदी उससे अच्छा गा सकती है।

सरदार—(हँसकर) भला! उसका नाम क्या है?

सरदार-पत्नी—वही, सौसन—जिसे मैं देहली से खरीदकर ले आई हूँ।

सरदार—क्या खूब! अजी, उसको तो मैं रोज देखता हूँ। वह गाना जानती होती, तो क्या मैं आजतक न सुन सकता?

सरदार-पत्नी—तो इसमें बहस की कोई जरूरत नहीं है। कल उसका और रामप्रसाद का सामना कराया जावे।

सरदार—क्या हर्ज।

४

आज उस छोटे-से उद्यान में अच्छी सजधज है। साज लेकर दासियाँ बजा रही हैं। 'सौसन' संकुचित होकर रामप्रसाद के सामने बैठी है। सरदार ने उसे गाने की आज्ञा दी। उसने गाना आरम्भ किया—

कहो री, जो कहिबे की होई।
बिरह-बिथा अन्तर की वेदन सो जाने जेहि होई॥

ऐसे कठिन भये पिय प्यारे काहि सुनावों रोई ।
'सूरदास' सुखमूरि मनोहर लै जुगयो मन गोई ॥

कमनीय कामिनी-कण्ठ की प्रत्येक तान में ऐसी सुन्दरता थी कि सुननेवाले, बजानेवाले—सब चित्र-लिखे-से हो गये। रामप्रसाद की विचित्र दशा थी, क्योंकि सौसन के स्वाभाविक भाव जो उसकी ओर देखकर होते थे—उसे मुग्ध किये हुए थे।

रामप्रसाद गायक था; किन्तु रमणी-सुलभ भ्रू-भाव उसे नहीं आते थे। उसकी अन्तरात्मा ने उससे धीरे से कहा कि 'सर्वस्व हार चुका!'

सरदार ने कहा—रामप्रसाद, तुम भी गावो। वह भी—एक अनिवार्य आकर्षण से—इच्छा न रहने पर भी, गाने लगा।

हमारो हिरदय कुलिसहु जीत्यो ।
फटत न सखी अजहुँ उहि आसा बरिस दिवस पर बीत्यो ॥
हमहूँ समुझि पर्‌यो नीके करि यह आसा तनु रीत्यो ।
'सूरस्याम' दासी सुख सोवहु भयउ उभय मन चीत्यो ॥

सौसन के चेहरे पर गाने का भाव एकबारगी अरुणिमा में प्रगत हो गया। रामप्रसाद ने ऐसे करुण स्वर से इस पद को गाया कि दोनों मुग्ध हो गये।

सरदार ने देखा कि मेरी जीत हुई। प्रसन्न होकर बोल उठा—रामप्रसाद, जो इच्छा हो, माँग लो।

यह सुनकर सरदार-पत्नी के यहाँ से एक बाँदी आई और सौसन से बोली—बेगम ने कहा है कि तुम्हें भी जो माँगना हो, हमसे माँग लो।

रामप्रसाद ने थोड़ी देर तक कुछ न कहा। जब दूसरी बार सरदार ने माँगने को कहा, तब उसका चेहरा कुछ अस्वाभाविक-सा हो उठा। वह विक्षिप्त स्वर से बोल उठा—यदि आप अपनी बात पर दृढ़ हों, तो 'सौसन' को मुझे दे दीजिये।

उसी समय सौसन भी उस बाँदी से बोली—बेगम साहिबा यदि कुछ मुझे देना चाहें, तो अपने दासीपन से मुझे मुक्त कर दें।

बाँदी भातर चली गई। सरदार चुप रह गये। बाँदी फिर आई और बोली—बेगम ने तुम्हारी प्रार्थना स्वीकार की और यह हार दिया है।

इतना कहकर उसने एक जड़ाऊ हार सौसन को पहना दिया।

सरदार ने कहा—रामप्रसाद, आज से तुम 'तानसेन' हुए। यह सौसन भी तुम्हारी हुई; लेकिन धरम से इसके साथ ब्याह करो।

तानसेन ने कहा—आज से हमारा धर्म 'प्रेम' है।

चन्द्रा

१

चैत्र-कृष्णाष्टमी का चन्द्रमा अपना उज्ज्वल प्रकाश 'चन्द्रप्रभा' के निर्मल जल पर डाल रहा है। गिरि-श्रेणी के तरुवर अपने रङ्ग को छोड़कर धवलित हो रहे हैं; कल-नादिनी समीर के सङ्ग धीरे-धीरे बह रही है। एक शिला-तल पर बैठी हुई कोल-कुमारी सुरीले स्वर से—'दरद-दिल काहि सुनाऊँ प्यारे! दरद...' गा रही है।

गीत अधूरा ही है कि अकस्मात् एक कोल-युवक धीर-पद-संचालन करता हुआ उस रमणी के सम्मुख आकर खड़ा हो गया। उसे देखते ही रमणी की हृदय-तंत्री बज उठी। रमणी बाह्य-स्वर भूलकर आन्तरिक स्वर से सुमधुर सङ्गीत गाने लगी और उठकर खड़ी हो गई। प्रणय के वेग को सहन न करके वर्षावारिपूरिता स्रोतस्विनी के समान कोल-कुमार के कंध-कूल से रमणी ने आलिङ्गन किया।

दोनों उसी शिला पर बैठ गये, और निर्निमेष सजल नेत्रों से परस्पर अवलोकन करने लगे। युवती ने कहा—तुम कैसे आये?

युवक—जैसे तुमने बुलाया।

युवती—(हँसकर) हमने तुम्हें कब बुलाया? और क्यों बुलाया?

युवक—गाकर बुलाया, और दरद सुनाने के लिये।

युवती—(दीर्घ निःश्वास लेकर) कैसे क्या करूँ? पिता ने तो उसीसे विवाह करना निश्चय किया है।

युवक—(उत्तेजना से खड़ा होकर) तो जो कहो, मैं करने के लिये प्रस्तुत हूँ।

युवती—(चन्द्रप्रभा की ओर दिखाकर) बस, यही शरण है।

युवक—तो हमारे लिये कौन दूसरा स्थान है।

युवती—मैं तो प्रस्तुत हूँ।

युवक—हम तुम्हारे पहले।

युवती ने कहा—तो चलो।

युवक ने मेघ-गर्जन-स्वर से कहा—चलो।

दोनों हाथ में हाथ मिलाकर पहाड़ी से उतरने लगे। दोनों उतरकर चन्द्रप्रभा के तट पर आये, और एक शिला पर खड़े हो गये। तब युवती ने कहा—अब बिदा !

युवक ने कहा—किससे ? मैं तो तुम्हारे साथ—जब तक सृष्टि रहेगी तब तक—रहूँगा।

इतने ही में शाल-वृक्ष के नीचे एक छाया दिखाई पड़ी और वह इन्हीं दोनों की ओर आती हुई दिखाई देने लगी। दोनों ने चकित होकर देखा कि एक कोल खड़ा है। उसने गम्भीर स्वर से युवती से पूछा—चन्दा ! तू यहाँ क्यों आई ?

युवती—तुम पूछनेवाले कौन हो ?

आगन्तुक युवक—मैं तुम्हारा भावी पति 'रामू' हूँ।

युवती—मैं तुमसे ब्याह न करूँगी।

आ० यु०—फिर किससे तुम्हारा ब्याह होगा ?

युवती ने पहले के आये हुए युवक की ओर इङ्गित करके कहा—इन्हीं से।

आगन्तुक युवक से अब न सहा गया। घूमकर पूछा—क्यों हीरा! तुम ब्याह करोगे?

हीरा—तो इसमें तुम्हारा क्या तात्पर्य है?

रामू—तुम्हें इससे अलग हो जाना चाहिये।

हीरा—क्यों, तुम कौन होते हो?

रामू—हमारा इससे सम्बन्ध पक्का हो चुका है।

हीरा—पर जिससे सम्बन्ध होनेवाला है, वह सहमत हो तब न?

रामू—क्यों चन्दा! क्या कहती हो?

चन्दा—मैं तुमसे ब्याह न करूँगी।

रामू—तो हीरा से भी तुम ब्याह नहीं कर सकती!

चन्दा—क्यों?

रामू—(हीरा से) अब हमारा-तुम्हारा फैसला हो जाना चाहिये, क्योंकि एक म्यान में दो तलवारें नहीं रह सकतीं।

इतना कहकर हीरा के ऊपर झपटकर उसने अचानक छुरे का वार किया।

हीरा यद्यपि सचेत हो रहा था; पर उसको सम्हलने में विलम्ब हुआ, इससे घाव लग गया, और वह वृक्ष थामकर बैठ गया। इतने में चन्दा जोर से क्रन्दन कर उठी—साथ ही, एक वृद्ध भील आता हुआ दिखाई पड़ा।

२

युवती मुँह ढाँपकर रो रही है, और युवक रक्ताक्त छुरा लिये, घृणा की दृष्टि से खड़े हुए, हीरा की ओर देख रहा है। विमल

चन्द्रिका में चित्र की तरह वे दिखाई दे रहे हैं। वृद्ध को जब चन्द्रा ने देखा, तो और वेग से रोने लगी। उस दृश्य को देखते ही वृद्ध कोल-पति सब बात समझ गया, और रामू के समीप जाकर छुरा उसके हाथ से ले लिया, और आज्ञा के स्वर में कहा—तुम दोनों हीरा को उठाकर नदी के समीप ले चलो।

इतना कहकर वृद्ध उन सबों के साथ आकर नदी-तट पर जल के समीप खड़ा हो गया। रामू और चन्द्रा दोनों ने मिलकर उसके घाव को धोया और हीरा के मुँह पर छींटा दिया, जिससे उसकी मूर्च्छा दूर हुई। तब वृद्ध ने सब बातें हीरा से पूछीं; पूछ लेने पर रामू से कहा—क्यों, यह सब ठीक है?

रामू ने कहा—सब सत्य है।

वृद्ध—तो तुम अब चन्द्रा के योग्य नहीं हो, और यह छुरा भी—जिसे हमने तुम्हें दिया था—तुम्हारे योग्य नहीं है। तुम शीघ्र ही हमारे जंगल से चले जाओ, नहीं तो हम तुम्हारा हाल महाराज से कह देंगे, और उसका क्या परिणाम होगा सो तुम स्वयं समझ सकते हो। (हीरा की ओर देखकर) बेटा! तुम्हारा घाव शीघ्र अच्छा हो जायेगा, घबड़ाना नहीं, चन्द्रा तुम्हारी ही होगी।

यह सुनकर चन्द्रा और हीरा का मुख प्रसन्नता से चमकने लगा, पर हीरा ने लेटे-ही-लेटे हाथ जोड़कर कहा—पिता! एक बात कहनी है, यदि आपकी आज्ञा हो।

वृद्ध—हम समझ गये, बेटा! रामू विश्वासघाती है।

हीरा—नहीं पिता! अब वह ऐसा कार्य न करेगा। आप

क्षमा करेंगे, मैं ऐसी आशा करता हूँ।

वृद्ध—जैसी तुम्हारी इच्छा।

कुछ दिन के बाद जब हीरा अच्छी प्रकार से आरोग्य हो गया, तब उसका ब्याह चन्दा से हो गया। रामू भी उस उत्सव में सम्मिलित हुआ, पर उसका बदन मलीन और चिन्तापूर्ण था। वृद्ध कुछ ही काल में अपना पद हीरा को सौंप स्वर्ग को सिधारा। हीरा और चन्दा सुख से विमल चाँदनी में बैठकर पहाड़ी झरनों का कल-नाद-मय आनन्द-संगीत सुनते थे।

३

अंशुमाली अपने तीक्ष्ण किरणों से वन्य-देश को परितापित कर रहे हैं। मृग-सिंह एक स्थान पर बैठकर, छाया-सुख में अपने बैर-भाव को भूलकर, ऊँघ रहे हैं। चन्द्रप्रभा के तट पर पहाड़ी की एक गुहा में, जहाँ कि छतनार पेड़ों की छाया उष्ण वायु को भी शीतल कर देती है, हीरा और चन्दा बैठे हैं। हृदय के अनन्त विकास से उनका मुख प्रफुल्लित दिखाई पड़ता है। उन्हें वस्त्र के लिये वृक्षगण वल्कल देते हैं; भोजन के लिये प्याज-मेवा इत्यादि जंगली सुस्वादु फल, शीतल-स्वच्छन्द पवन; निवास के लिये गिरि-गुहा; प्राकृतिक झरनों का शीतल जल उनके सब अभावों को दूर करता है, और सबल तथा स्वच्छन्द बनाने में ये सब सहायता देते हैं। उन्हें किसी की अपेक्षा नहीं करनी पड़ती। अस्तु, उन्हीं सब सुखों से आनंदित व्यक्तिद्वय 'चन्द्रप्रभा' के जल का कल-नाद सुनकर अपने हृदय-वीणा को बजाते हैं।

चन्दा—प्रिय! आज उदासीन क्यों हो?

हीरा—नहीं तो, मैं यह सोच रहा हूँ कि इस वन में राजा आनेवाले हैं। हमलोग यद्यपि अधीन नहीं हैं, तो भी उन्हें शिकार खेलाया जाता है, और इसमें हमलोगों की कुछ हानि भी नहीं है। उसके प्रतिकार में हमलोगों को कुछ मिलता है पर आजकल इस वन में जानवर दिखाई नहीं पड़ते। इसलिये सोचता हूँ कि कोई शेर या छोटा चीता भी मिल जाता तो कार्य हो जाता।

चन्दा—खोज किया था ?

हीरा—हाँ, आदमी तो गया है।

इतने में एक कोल दौड़ता हुआ आया, और कहा—राजा आ गये हैं और तहखाने में बैठे हैं। एक तेंदुवा भी दिखाई दिया है।

हीरा का मुख प्रसन्नता से चमकने लगा, और वह अपना कुल्हाड़ा सम्हालकर उस आगन्तुक के साथ वहाँ पहुँचा, जहाँ शिकार का आयोजन हो चुका था।

राजा-साहब झँझरी में बन्दूक की नाल रखे हुए ताक रहे हैं। एक ओर से बाजा बज उठा। एक चीता भागता हुआ सामने से निकला। राजा-साहब ने उसपर वार किया। गोली लगी, पर चमड़े को छेदती हुई पार हो गई; इससे वह जानवर भागकर निकल गया। अब तो राजा-साहब बहुत ही दुःखित हुए। हीरा को बुलाकर कहा—क्यों जी, यह जानवर नहीं मिलेगा ?

उस वीर कोल ने कहा—क्यों नहीं ?

इतना कहकर वह उसी ओर चला। झाड़ी में जहाँ वह चीता घाव से व्याकुल बैठा हुआ था, वहाँ पहुँचकर उसने देखना आरम्भ किया। क्रोध से भरा हुआ चीता उस कोल-युवक को देखते ही

झपटा। युवक असावधानी के कारण वार न कर सका, पर दोनों हाथों से उस भयानक जन्तु की गर्दन को पकड़ लिया, और उसने भी इसके कंधे पर अपने दोनों पंजों को जमा दिया।

दोनों में बल-प्रयोग होने लगा। थोड़ी देर में दोनों जमीन पर लेट गये।

४

यह बात राजा-साहब को विदित हुई। उन्होंने उसकी मदद के लिये कोलों को जाने की आज्ञा दी। रामू उस अवसर पर था। उसने सबके पहले जाने के लिये पैर बढ़ाया, और चला। वहाँ जब पहुँचा, तो उस दृश्य को देखकर घबड़ा गया, और हीरा से कहा—हाथ ढीला कर; जब यह छोड़ने लगे तब गोली मारूँ, नहीं तो सम्भव है कि तुम्हीं को लग जाय।

हीरा—नहीं, तुम गोली मारो।

रामू—तुम छोड़ो तो मैं वार करूँ।

हीरा—नहीं, यह अच्छा नहीं होगा।

रामू—तुम उसे छोड़ो, मैं अभी मारता हूँ।

हीरा—नहीं, तुम वार करो।

रामू—वार करने से सम्भव है कि उछले और तुम्हारे हाथ छूट जायँ, तो तुमको यह तोड़ डालेगा।

हीरा—नहीं, तुम मार लो, मेरा हाथ ढीला हुआ जाता है।

रामू—तुम हठ करते हो, मानते नहीं।

इतने में हीरा का हाथ कुछ बातचीत करते-करते ढीला पड़ा; वह चीता उछलकर हीरा के कमर को पकड़कर तोड़ने लगा।

छाया।

रामू खड़ा होकर देख रहा है, और पैशाचिक आकृति उस घृणित पशु के मुख पर लक्षित हो रही है, और वह हँस रहा है।

हीरा टूटी हुई सांस से कहने लगा—अब भी मार ले।

रामू ने कहा—अब तू मर ले, तब वह भी मारा जायगा। तूने हमारा हृदय निकाल लिया है, तूने हमारा घोर अपमान किया है, उसी का प्रतिफल है। इसे भोग।

हीरा को चीता खाये डालता है; पर उसने कहा—नीच! तू जानता है कि 'चन्दा' अब मेरी होगी। कभी नहीं! तू नीच है—इस चीते से भी भयंकर जानवर है।

रामू ने पैशाचिक हँसी हँसकर कहा—चन्दा अब तेरी तो नहीं है, अब वह चाहे जिसकी हो!

हीरा ने टूटी हुई आवाज़ से कहा—तुझे इस विश्वासघात का फल शीघ्र मिलेगा और चन्दा फिर हमसे मिलेगी। चन्दा···· प्यारी···च···

इतना उसके मुख से निकला ही था कि चीते ने उसका सिर दाँतों के तले दाब लिया। रामू देखकर पैशाचिक हँसी हँस रहा था। हीरा के समाप्त हो जाने पर रामू लौट आया, और झूठी बातें बनाकर राजा से कहा कि उसको हमारे जाने के पहले ही चीता ने मार लिया।

राजा बहुत दुःखी हुए, और जंगल की सर्दारी रामू को मिली।

५

वसन्त की राका चारों ओर अनूठा दृश्य दिखा रही है।

चन्द्रमा न मालूम किस लक्ष्य की ओर दौड़ा चला जा रहा है; कुछ पूछने से भी नहीं बताता। कुटज की कली का परिमल लिये पवन भी न मालूम कहाँ दौड़ रहा है, उसका भी कुछ समझ नहीं पड़ता। उसी तरह, चन्द्रप्रभा के तीर पर बैठी हुई कोलकुमारी का कोमल कण्ठ-स्वर भी किस धुन में है—नहीं ज्ञात होता।

अकस्मात् गोली की आवाज़ ने उसे चौंका दिया। गाने के समय जो उसका मुख उद्वेग और करुणा से पूर्ण दिखाई पड़ता था, वह घृणा और क्रोध से रञ्जित हो गया, और वह उठकर पुच्छमर्दिता सिंहिनी के समान तनकर खड़ी हो गई, और धीरे से कहा—यही समय है। ज्ञात होता है, राजा इस समय शिकार खेलने पुनः आ गये हैं—बस वह अपने वस्त्र को ठीक करके कोल-बालक बन गई, और कमर में से एक चमचमाता हुआ छुरा निकालकर चूमा। वह चाँदनी में चमकने लगा। फिर वह कहने लगी—यद्यपि तुमने हीरा का रक्तपान कर लिया है, लेकिन पिता ने रामू से तुम्हें ले लिया है, अब तुम हमारे हाथ में हो, तुम्हें आज रामू का भी खून पीना होगा।

इतना कहकर वह गोली के शब्द की ओर लक्ष्य करके चली, देखा कि तहखाने में राजासाहब बैठे हैं। शेर को गोली लग चुकी है, और वह भाग गया है, उसका पता नहीं लग रहा है, रामू सर्दार है, अतएव उसको खोजने के लिये आज्ञा हुई, वह शीघ्र ही सन्नद्ध हुआ। राजा ने कहा—कोई साथी लेते जाओ।

पहले तो उसने अस्वीकार किया, पर जब एक कोल-युवक

स्वयं साथ चलने को तैयार हुआ तो वह नहीं भी न कर सका, और सीधे—जिधर शेर गया था, उसी ओर—चला। कोल-बालक भी उसके पीछे है। वहाँ घाव से व्याकुल शेर चिग्घाड़ रहा है, इसने जाते ही ललकारा। उसने तत्काल ही निकलकर वार किया। रामू कम साहसी नहीं था, उसने उसके खुले हुए मुँह में निर्भीक होकर बन्दूक की नाल डाल दी, पर उसके जरा-सा मुँह घुमा लेने से गोली चमड़ा छेदकर पार निकल गई, और शेर ने क्रुद्ध होकर दाँत से बन्दूक की नाल दबा ली। अब दोनों एक दूसरे को ढकेलने लगे, पर कोल-बालक चुपचाप खड़ा है। रामू ने कहा—मार, अब देखता क्या है।

युवक—तुम इससे बहुत अच्छी तरह लड़ रहे हो।

रामू—मारता क्यों नहीं ?

युवक—इसी तरह शायद हीरा से भी लड़ाई हुई थी, क्या तुम नहीं लड़ सकते ?

रामू—कौन, चन्दा ! तुम हो ? आह, शीघ्र मारो, नहीं तो अब यह सबल हो रहा है।

चन्दा ने कहा—हाँ, लो, मैं मारती हूँ, इसी छुरे से हमारे सामने तुमने हीरा को मारा था, यह वही छुरा है, यह तुझे दुःख से निश्चय ही छुड़ावेगा—इतना कहकर चन्दा ने रामू की बगल में छुरा उतार दिया। वह छटपटाया; इतने ही में शेर को मौका मिला, वह भी रामू पर टूट पड़ा और उसका इति कर आप भी वहीं गिर पड़ा।

चन्दा ने अपना छुरा निकाल लिया, और उसको चाँदनी में

रँगा हुआ देखने लगी, फिर खिलखिलाकर हँसी और कहा,—'दरद दिल काहि सुनाऊँ प्यारे' ! फिर हँसकर कहा—हीरा ! तुम देखते होगे, पर अब तो यह छुरा ही दिल की दाह सुनेगा। इतना कहकर अपनी छाती में उसे भोंक लिया और उसी जगह गिर गई, और कहने लगी हीरा....हम....तुमसे...मिले ही......

चन्द्रमा अपने मन्द प्रकाश में यह सब देख रहा था।

ग्राम

१

टन ! टन ! टन ! स्टेशन पर घंटी बोली।

श्रावण-मास की सन्ध्या भी कैसी मनोहारिणी होती है ! मेघमाला-विभूषित गगन की छाया सघन रसाल-कानन में पड़ रही है। अँधियारी धीरे-धीरे अपना अधिकार पूर्व-गगन में जमाती हुई, सुशासन-कारिणी महारानी के समान, विहंग-प्रजागण को सुख-निकेतन में शयन करने की आज्ञा दे रही है। आकाश-रूपी शासन-पत्र पर प्रकृति के हस्ताक्षर के समान बिजली की रेखा दिखाई पड़ती है।······ग्राम्य स्टेशन पर कहीं एक-दो दीपालोक दिखाई पड़ते हैं। पवन हरे-हरे निकुञ्जों में से भ्रमण करता हुआ झिल्ली के झनकार के साथ भरी हुई झीलों में लहरों के साथ खेल रहा है। बूँदियाँ धीरे-धीरे गिर रही हैं, जो कि जूही की कलियों को आर्द्र करके पवन को भी शीतल कर रही हैं।

थोड़े समय में वर्षा बन्द हो गई। अन्धकार-रूपी अञ्जन के अग्रभागस्थित आलोक के समान चतुर्दशी की लालिमा को लिये हुए चन्द्रदेव प्राची में हरे-हरे तरुवरों की आड़ में से अपनी किरण-प्रभा दिखाने लगे। पवन की सनसनाहट के साथ रेलगाड़ी का शब्द सुनाई पड़ने लगा। सिग्नेलर ने अपना कार्य किया। घंटा का शब्द उस हरे-भरे मैदान में गूँजने लगा। यात्री लोग अपनी गठरी बाँधते हुए स्टेशन पर पहुँचे। महादैत्य के लाल-लाल नेत्रों

के समान अञ्जन-गिरि-निभ इञ्जिन का अग्रस्थित रक्त-आलोक दिखाई देने लगा। पागलों के समान बड़बड़ाती हुई अपने धुन की पक्की रेलगाड़ी स्टेशन पर पहुँच गई। धड़ाधड़ यात्री लोग उतरने-चढ़ने लगे। एक स्त्री की ओर देखकर फाटक के बाहर खड़ी हुई दो औरतें—जो उसकी सहेली मालूम देती हैं—रो रही हैं, और वह स्त्री एक मनुष्य के साथ रेल में बैठने को उद्यत है। उनके क्रन्दन-ध्वनि से वह स्त्री दीन भाव से उनकी ओर देखती हुई, बिना समझे हुए, सेकण्ड क्लास की गाड़ी में चढ़ने लगी; पर उसमें बैठे हुए बाबू साहब—'यह दूसरा दर्जा है, इसमें मत चढ़ो'—कहते हुए उतर पड़े, और अपना हंटर घुमाते हुए स्टेशन से बाहर होने का उद्योग करने लगे।

विलायती पिक का बूचिस पहने, बूट चढ़ाये, हंटिङ्ग कोट, धानी रंग का साफा, अँग्रेजी-हिन्दुस्तानी का महासम्मेलन बाबू साहब के अङ्ग पर दिखाई पड़ रहा है। गौर वर्ण, उन्नत ललाट—उसकी आभा को बढ़ा रहे हैं। स्टेशनमास्टर से सामना होते ही शेकहैण्ड करने के उपरान्त बाबूसाहब से बातचीत होने लगी।

स्टे० मा०—आप इस वक्त कहाँ से आ रहे हैं ?

मोहन०—कारिन्दों ने इलाके में बड़ा गड़बड़ मचा रक्खा है, इसलिये मैं कुसुमपुर—जो कि हमारा इलाका है—इन्स्पेक्शन के लिये जा रहा हूँ।

स्टे० मा०—फिर कब पलटियेगा ?

मोहन०—दो-एक रोज में। अच्छा, गुडइवनिंग !

स्टेशनमास्टर, जो लाइन-क्लियर दे चुके थे, गुडइवनिंग करते हुए अपने आफ़िस में घुस गये।

बाबू मोहनलाल अँग्रेजी काठी से सजे हुए घोड़े पर, जो कि पूर्व ही से स्टेशन पर खड़ा था, सवार होकर चलते हुए।

२

सरलस्वभावा ग्रामवासिनी कुलकामिनीगण का सुमधुर सङ्गीत धीरे-धीरे आम्र-कानन में से निकलकर चारों ओर गूँज रहा है। अन्धकार-गगन में जुगनू-तारे चमक-चमककर चित्त को चञ्चल कर रहे हैं। ग्रामीण लोग अपना हल कन्धे पर रक्खे, बिरहा गाते हुए, बैलों की जोड़ी के साथ, घर की ओर प्रत्यावर्त्तन कर रहे हैं।

एक विशाल तरुवर की शाखा में झूला पड़ा हुआ है, उसपर चार महिलाएँ बैठी हैं, और पचासों उसको घेरकर गाती हुई घूम रही हैं। झूला के पेंग के साथ 'अबकी सावन सइयाँ घर रहु रे' की सुरीली—पचासों कोकिल-कण्ठ से निकली हुई—तान पशुगणों को भी मोहित कर रही है। बालिकाएँ स्वच्छन्द भाव से क्रीड़ा कर रही हैं। अकस्मात् अश्व के पद-शब्द ने उन सरला कामिनियों को चौंका दिया। वे सब देखती हैं तो हमारे पूर्व-परिचित बाबू मोहनलाल घोड़े को रोककर उसपर से उतर रहे हैं। वे सब उनका भेष देखकर घबड़ा गईं और आपस में कुछ इङ्गित करके चुप रह गईं।

बाबू मोहनलाल ने निस्तब्धता को भंग किया, और बोले—भद्रे! यहाँ से कुसुमपुर कितनी दूर है? और किधर से जाना होगा?

एक प्रौढ़ा ने सोचा कि 'मद्रं' कोई परिहास शब्द तो नहीं है, पर वह कुछ कह न सकी, केवल एक ओर दिखाकर बोली—इहाँ से डेढ़ै कोस तो बाय, इहै पैंड़वा जाई।

बाबू मोहनलाल उसी पगडण्डी से चले। चलते-चलते उन्हें भ्रम हो गया, और वह अपनी छावनी का पथ छोड़कर दूसरे मार्ग से जाने लगे। मेघ घिर आये, जल वेग से बरसने लगा, अन्धकार और घना हो गया। भटकते-भटकते वह एक खेत के समीप पहुँचे; वहाँ उस हरे-भरे खेत में एक ऊँचा और बड़ा मचान था, जो कि फूल से छाया हुआ था, और समीप ही में एक छोटा-सा कच्चा मकान था।

उस मचान पर बालक और बालिकाएँ बैठी हुई कोलाहल मचा रही थीं। जल में भीगते हुए भी मोहनलाल खेत के समीप खड़े होकर उनके आनन्द-कलरव को श्रवण करने लगे।

भ्रान्त होने से उन्हें बहुत समय व्यतीत हो गया। रात्रि अधिक बीत गई। कहाँ ठहरें? इसी विचार में वह खड़े रहे, बूँदें कम हो गईं। इतने में एक बालिका अपने मलिन वसन के अञ्चल की आड़ में दीप लिये हुए उसी मचान की ओर जाती हुई दिखाई पड़ी।

३

बालिका की अवस्था १५ वर्ष की है। आलोक से उसका अङ्ग अन्धकार-घन में विद्युल्लेखा की तरह चमक रहा था। यद्यपि दरिद्रता ने उसे मलिन कर रक्खा है, पर ईश्वरीय सुषमा उसके कोमल अङ्ग पर अपना निवास किये हुए है। मोहनलाल ने घोड़ा

बढ़ाकर उससे कुछ पूछना चाहा, पर संकुचित होकर ठिठक गये। परन्तु पूछने के अतिरिक्त दूसरा उपाय ही नहीं था। अस्तु, रूखेपन के साथ पूछा—कुसुमपुर का रास्ता किधर है ?

बालिका इस भव्य मूर्ति को देखकर डरी, पर साहस के साथ बोली—मैं नहीं जानती।

ऐसे सरल नेत्र-सञ्चालन से इङ्गित करके उसने यह शब्द कहा कि युवक को क्रोध के स्थान में हँसी आ गई, और कहने लगा—तो जो जानता हो, मुझे बतलाओ, मैं उससे पूछ लूँगा।

बालिका—हमारी माता जानती होंगी।

मोहन०—इस समय तुम कहाँ जाती हो ?

बालिका—(मचान की ओर दिखाकर) वहाँ जो कई लड़के हैं, उनमें से एक हमारा भाई है, उसीको खिलाने जाती हूँ।

मोहन०—बालक इतनी रात को खेत में क्यों बैठा है ?

बालिका—वह रात-भर और लड़कों के साथ खेत ही में रहता है।

मोहन०—तुम्हारी माँ कहाँ है ?

बालिका—चलिये, मैं लिवा चलती हूँ।

इतना कहकर बालिका अपने भाई के पास गई, और उसको खिलाकर तथा उसके पास बैठे हुए लड़कों को भी कुछ देकर उसी क्षुद्र-कुटीराभिमुख गमन करने लगी। मोहनलाल उस सरला बालिका के पीछे चले।

४

उस क्षुद्र कुटीर में पहुँचने पर एक स्त्री मोहनलाल को

दिखाई पड़ी, जिसकी अङ्गप्रभा स्वर्ण-तुल्य थी; तेजोमय मुख-मण्डल, तथा ईषत् उन्नत अधर अभिमान से भरे हुए थे; अवस्था उसकी ४० वर्ष से अधिक थी। मोहनलाल की आन्तरिक अवस्था, जो ग्राम्यजीवन देखने से कुछ बदल चुकी थी, उस सरल गम्भीर तेजोमय मूर्ति को देख और भी सरल विनययुक्त हो गई। उसने झुककर प्रणाम किया। स्त्री ने आशीर्वाद दिया और पूछा—बेटा! कहाँ से आते हो?

मोहन०—मैं कुसुमपुर जाता था, किन्तु रास्ता भूल गया......

'कुसुमपुर' का नाम सुनते ही स्त्री का मुखमण्डल आरक्तिम हो गया, और उसके नेत्र से दो बूँद आँसू निकल आये। ये अश्रु करुणा के नहीं, किन्तु अभिमान के थे।

मोहनलाल आश्चर्यान्वित होकर देख रहे थे। उन्होंने पूछा—आपको कुसुमपुर के नाम से क्षोभ क्यों हुआ?

स्त्री—बेटा! उसकी बड़ी कथा है, तुम सुनकर क्या करोगे!

मोहन०—नहीं, मैं सुनना चाहता हूँ, यदि आप कृपा करके सुनावें।

स्त्री ने कहा—अच्छा, कुछ जलपान कर लो, तब सुनाऊँगी। पुनः बालिका की ओर देखकर स्त्री ने कहा—कुछ जल पीने को ले आओ।

आज्ञा पाते ही बालिका उस क्षुद्र गृह के एक मिट्टी के बर्तन में से कुछ वस्तु निकाल, उसे एक पात्र में घोलकर ले आई, और मोहनलाल के सामने रख दिया। मोहनलाल उस शर्बत को पान करके फूस की चटाई पर बैठकर स्त्री की कथा सुनने लगे।

५

स्त्री कहने लगी—हमारे पति इस प्रान्त के गण्य भूस्वामी थे, और वंश भी हमलोगों का बहुत उच्च था। जिस गाँव का अभी आपने नाम लिया है, वही हमारे पति की प्रधान जमींदारी थी। कार्यवश एक कुन्दनलाल नामक महाजन से कुछ ऋण लिया गया। कुछ भी विचार न करने से उनका बहुत रुपया बढ़ गया, और जब ऐसी अवस्था पहुँची तो अनेक उपाय करके हमारे पति धन जुटाकर उनके पास ले गये, तब उस धूर्त ने कहा—"क्या हर्ज है बाबूसाहब! आप आठ रोज में आना, हम रुपया ले लेंगे, और जो घाटा होगा उसे छोड़ देंगे, आपका इलाक़ा फिर जायगा, इस समय रेहननामा भी नहीं मिल रहा है।" उसका विश्वास करके हमारे पति फिर बैठ रहे, और उसने कुछ भी न पूछा। उनकी उदारता के कारण वह सञ्चित धन भी थोड़ा हो गया, और उधर उसने दावा करके इलाक़ा—जो कि वह ले लेना चाहता था—बहुत थोड़े रुपये में नीलाम करा लिया। फिर हमारे पति के हृदय में, उस इलाक़ा के इस भाँति निकल जाने के कारण, बहुत चोट पहुँची और इसीसे उनकी मृत्यु हो गई। इस दशा के होने के उपरान्त हम लोग इस दूसरे गाँव में आकर रहने लगीं। यहाँ के जमींदार बहुत धर्मात्मा हैं, उन्होंने कुछ सामान्य 'कर' पर यह भूमि दी है, इसी से अब हमारी जीविका है।.. ....

इतना कहते-कहते स्त्री का गला अभिमान से भर आया, और कुछ कह न सकी।

स्त्री की कथा को सुनकर मोहनलाल को बड़ा दुःख हुआ।

रात विशेष बीत चुकी थी, अतः रात्रि-यापन करके, प्रभात में मलिन तथा पश्चिमगामी चन्द्र का अनुसरण करके, बताए हुए पथ से वह चले गये।

पर उनके मुख पर विषाद तथा लज्जा ने अधिकार कर लिया था। कारण यह था कि स्त्री की जमींदारी हरण करनेवाले, तथा उसके प्राणप्रिय पति से उसे विच्छेद कराकर इस भाँति दुःख देने वाले कुन्दनलाल, मोहनलाल के ही पिता थे!

रसिया बालम

१

संसार को शान्तिमय करने के लिये रजनीदेवी ने अभी अपना अधिकार पूर्णतः नहीं प्राप्त किया है। अंशुमाली अभी अपने आधे बिम्ब को प्रतीची में दिखा रहे हैं। केवल एक मनुष्य अर्बुद-गिरि-सुदृढ़ दुर्ग के नीचे एक झरने के तट पर बैठा हुआ उस अर्ध-स्वर्ण-पिण्ड की ओर देखता है, और कभी-कभी दुर्ग के ऊपर राजमहल के खिड़की की ओर भी देख लेता है, फिर कुछ गुनगुनाने लगता है।

घण्टों उसे वैसे ही बैठे बीत गये। कोई कार्य नहीं, केवल उस खिड़की की ओर देखना। अकस्मात् एक उँजेले की प्रभा उस नीची पहाड़ी भूमि पर पड़ी और साथ ही किसी वस्तु का शब्द भी हुआ, परन्तु उस युवक का ध्यान उस ओर नहीं था। वह तो केवल उस खिड़की में के उस सुन्दर मुख को फिर देखने की आशा से उसी ओर देखता रहा, जिसने केवल एक बार उसे झलक दिखाकर मंत्रमुग्ध कर दिया था।

इधर उस कागज में लिपटी हुई वस्तु को एक अपरिचित व्यक्ति, जो छिपा खड़ा था, उठाकर चलता हुआ। धीरे-धीरे रजनी की गम्भीरता उस शैल-प्रदेश में और भी गम्भीर हो गई, और झाड़ियों की ओट में तो अन्धकार मूर्तिमान ही बैठा हुआ ज्ञात होता था, परन्तु उस युवक को इसकी कुछ भी चिन्ता नहीं। जब तक उस खिड़की में प्रकाश था, तब तक वह उसी ओर निर्निमेष

देख रहा था, और कभी-कभी अस्फुट स्वर से वही गुनगुनाहट उसके मुख से वनस्पतियों को सुनाई पड़ती थी।

जब वह प्रकाश बिल्कुल न रहा, तब वह युवक उठा और समीप के झरने के तट से होते हुए उसी अन्धकार में विलीन हो गया।

२

दिवाकर की पहली किरण ने जब चमेली की कलियों को चटकाया, तो उन डालियों को उतना नहीं ज्ञात हुआ, जैसा कि एक युवक के शरीर-स्पर्श से उन्हें हिलना पड़ा, जो कि काँटे और झाड़ियों का कुछ भी ध्यान न करके सीधा अपने मार्ग का अनुसरण कर रहा है। वह युवक फिर उसी खिड़की के सामने पहुँचा और जाकर अपने पूर्वपरिचित शिलाखण्ड पर बैठ गया, और पुनः वही क्रिया आरम्भ हुई। धीरे-धीरे एक सैनिक पुरुष ने आकर उस युवक के कन्धे पर अपना हाथ रक्खा।

युवक चौंक उठा और क्रोधित होकर बोला—तुम कौन हो?

आगन्तुक हँस पड़ा और बोला—यही तो मेरा भी प्रश्न है कि तुम कौन हो! और क्यों इस अन्तःपुर की खिड़की के सामने बैठे हो? और तुम्हारा क्या अभिप्राय है?

युवक—मैं यहाँ घूमता हूँ, और यही मेरा मकान है। मैं जो यहाँ बैठा हूँ, मित्र! वह बात यह है कि मेरा एक मित्र इसी प्रकोष्ठ में रहता है; मैं कभी-कभी उसका दर्शन पा जाता हूँ, और अपने चित्त को प्रसन्न करता हूँ।

सैनिक—पर मित्र! तुम नहीं जानते कि यह राजकीय

अन्तःपुर है। तुम्हें ऐसे देखकर तुम्हारी क्या दशा हो सकती है? और महाराज तुम्हें क्या समझेंगे?

युवक—जो कुछ हो; मेरा कुछ असत् अभिप्राय नहीं है, मैं तो केवल सुन्दर रूप का दर्शन ही निरन्तर चाहता हूँ, और यदि महाराज भी पूछें तो यही कहूँगा।

सैनिक—तुम जिसे देखते हो, वह स्वयं राजकुमारी है, और वह तुम्हें कभी नहीं चाहती। अतएव तुम्हारा यह प्रयास व्यर्थ है।

युवक—क्या वह राजकुमारी है? तो चिन्ता क्या! मुझे तो केवल देखना है, मैं बैठे-बैठे देखा करूँगा। पर तुम्हें यह कैसे मालूम कि वह मुझे नहीं चाहती?

सैनिक—प्रमाण चाहते हो तो (एक पत्र देकर) यह देखो।

युवक उसे लेकर पढ़ता है। उसमें लिखा था—

"युवक!

तुम क्यों अपना समय व्यर्थ व्यतीत करते हो? मैं तुमसे कदापि नहीं मिल सकती। क्यों महीनों से यहाँ बैठे-बैठे अपना शरीर नष्ट कर रहे हो। मुझे तुम्हारी अवस्था देखकर दया आती है। अतः तुमको सचेत करती हूँ, फिर कभी यहाँ मत बैठना।

वही—

जिसे तुम देखा करते हो!"

३

युवक कुछ देर के लिये स्तम्भित हो गया। सैनिक सामने खड़ा था। अकस्मात् युवक उठकर खड़ा हो गया और सैनिक का हाथ पकड़कर बोला—मित्र! तुम हमारा कुछ उपकार कर सकते

हो ? यदि करो, तो कुछ विशेष परिश्रम न होगा।

सैनिक ने कहा—कहो, क्या है ? यदि हो सकेगा, तो अवश्य करूँगा।

तत्काल उस युवक ने अपनी उँगली एक पत्थर से कुचल दी, और अपने फटे वस्त्र में से एक टुकड़ा फाड़कर तिनका लेकर उसी रक्त से टुकड़े पर कुछ लिखा, और उस सैनिक के हाथ में देकर कहा—यदि हम न रहें, तो इसको उस निष्ठुर के हाथ में दे देना। बस, और कुछ नहीं।

इतना कहकर युवक ने पहाड़ी पर से कूदना चाहा; पर सैनिक ने उसे पकड़ लिया, और कहा—

रसिया ! ठहरो !—

युवक अवाक् हो गया; क्योंकि अब पाँच प्रहरी सैनिक के सामने सिर झुकाये खड़े थे, और पूर्व सैनिक स्वयं अर्बुदगिरि के महाराज थे।

महाराज आगे हुए और सैनिकों के बीच में रसिया। सब सिंहद्वार की ओर चले। किले के भीतर पहुँचकर रसिया को साथ में लिये हुए महाराज एक प्रकोष्ठ में पहुँचे। महाराज ने प्रहरी को आज्ञा दी कि महारानी और राजकुमारी को बुला लावे। वह प्रणाम कर चला गया।

महाराज—क्यों बलवन्त सिंह ! तुमने अपनी यह क्या दशा बना रक्खी है !

रसिया—(चौंककर) महाराज को मेरा नाम कैसे ज्ञात हुआ ?

महाराज—बलवन्त ! मैं बचपन से तुम्हें जानता हूँ और तुम्हारे पूर्वपुरुषों को भी जानता हूँ ।

रसिया चुप हो गया । इतने में महारानी भी राजकुमारी को साथ लिये हुए आ गईं ।

महारानी ने प्रणाम कर पूछा—क्या आज्ञा है ?

महाराज—बैठो, कुछ विशेष बात है । सुनो, और ध्यान से उसका उत्तर दो । यह युवक जो तुम्हारे सामने बैठा है, एक उत्तम क्षत्रिय-कुल का है, और मैं इसे जानता हूँ । यह हमारी राजकुमारी के प्रणय का भिखारी है । मेरी इच्छा है कि इससे उसका ब्याह हो जाय ।

राजकुमारी—जिसने कि आते ही युवक को देख लिया था और जो संकुचित होकर इस समय महारानी के पीछे खड़ी थी—यह सुनकर और भी संकुचित हुई । पर महारानी का मुख क्रोध से लाल हो गया । वह कड़े स्वर में बोलीं—क्या आपको खोजते-खोजते मेरी कुसुम-कुमारी कन्या के लिये यही वर मिला है ? वाह ! अच्छा जोड़ मिलाया । कङ्गाल और उसके लिये निधि; बन्दर और उसके गले में हार; भला यह भी कहीं सम्भव है ? आप शीघ्र अपने भ्रान्तिरोग की औषधि कर डालिये । यह भी कैसा परिहास है ! (कन्या से) चलो बेटी, यहाँ से चलो ।

महाराज—नहीं, ठहरो और सुनो । यह स्थिर हो चुका है कि राजकुमारी का ब्याह बलवन्त से होगा, तुम इसे परिहास मत जानो ।

अब जो महारानी ने महाराज के मुख की ओर देखा तो वह

दृढ़प्रतिज्ञ दिखाई पड़े। निदान विचलित होकर महारानी ने कहा—अच्छा, मैं भी प्रस्तुत हो जाऊँगी, पर इस शर्त पर कि जब यह पुरुष अपने बाहुबल से उस झरने के समीप से नीचे तक एक पहाड़ी रास्ता काटकर बना ले; उसके लिये समय अभी से केवल प्रातःकाल तक का देती हूँ—जब तक कि कुक्कुट का स्वर न सुनाई पड़े। तब अवश्य मैं भी राजकुमारी का ब्याह इसी से कर दूँगी।

महाराज ने युवक की ओर देखा, जो निस्तब्ध बैठा हुआ सुन रहा था। वह उसी क्षण उठा और बोला—मैं प्रस्तुत हूँ, पर कुछ औजार और मसाले के लिये थोड़े विष की आवश्यकता है।

उसकी आज्ञानुसार सब वस्तुएँ उसे मिल गईं, और वह शीघ्रता से उसी झरने के तट की ओर दौड़ा, और एक विशाल शिलाखण्ड पर जाकर बैठ गया, और उसे तोड़ने का उद्योग करने लगा; क्योंकि इसी के नीचे एक गुप्त पहाड़ी पथ था।

४

निशा का अन्धकार कानन-प्रदेश में अपना पूरा अधिकार जमाये हुए है। प्रायः आधी रात बीत चुकी है। पर केवल उन अग्निस्फुलिङ्गों से कभी-कभी थोड़ा-सा जुगनू का-सा प्रकाश हो जाता है, जोकि रसिया के शस्त्रप्रहार से पत्थरों में से निकल पड़ते हैं। दनादन् चोट चली जा रही है—विराम नहीं है क्षण-भर भी—न तो उस शैल को और न उस शस्त्र को। अलौकिक शक्ति से वह युवक अविराम चोट लगाये ही जा रहा है। एक क्षण के लिये भी इधर-उधर नहीं देखता। देखता है, तो केवल अपना

हाथ और पत्थर; उँगली एक तो पहले ही कुचली जा चुकी थी, दूसरे अविराम परिश्रम ! इससे रक्त बहने लगा था। पर विश्राम कहाँ ? उस वज्रसार शैल पर वज्र के समान कर से वह युवक चोट लगाये ही जाता है। केवल परिश्रम ही नहीं, युवक सफल भी हो रहा है। उसकी एक-एक चोट में दस-दस सेर के ढोके कट-कटकर पहाड़ पर से लुढ़कते हैं, जो सोये हुए जङ्गली पशुओं को घबड़ा देते हैं। यह क्या है ? केवल उसकी तन्मयता। केवल प्रेम ही उस पाषाण को भी तोड़े डालता है !

फिर वही दनादन—बराबर लगातार परिश्रम, विराम नहीं है ! इधर उस खिड़की में से आलोक भी निकल रहा है और कभी-कभी एक मुखड़ा उस खिड़की से झाँककर देख रहा है। पर युवक को कुछ ध्यान नहीं, वह अपना कार्य करता जा रहा है।

अभी रात्रि के जाने के लिये पहर-भर है। शीतल वायु उस कानन को शीतल कर रही है। अकस्मात् 'तरुण-कुक्कुट-कण्ठनाद' सुनाई पड़ा। फिर कुछ नहीं। वह कानन एकाएक शून्य हो गया। न तो वह शब्द ही है और न तो पत्थरों से अग्निस्फुलिङ्ग निकलते हैं।

अकस्मात् उस खिड़की में से एक सुन्दर मुख निकला। उसने आलोक डालकर देखा कि रसिया एक पात्र हाथ में लिये है और कुछ कह रहा है। इसके उपरान्त वह उस पात्र को पी गया और थोड़ी देर में वह उसी शिलाखण्ड पर गिर पड़ा। यह देख उस मुख से भी एक हल्का चीत्कार निकल गया। खिड़की बन्द हो गई। फिर केवल अन्धकार रह गया।

५

प्रभात का मलय-मारुत उस अर्बुद-गिरि के कानन में वैसी क्रीड़ा नहीं कर रहा है जैसी पहले करता था। दिवाकर की किरण भी कुछ प्रभात के मिस से मन्द और मलिन हो रही है। एक शव के समीप एक पुरुष खड़ा है, और उसकी आँखों से अश्रु-धारा बह रही है, और वह कह रहा है—बलवन्त ! ऐसी शीघ्रता क्या थी जो तुमने ऐसा किया ? यह अर्बुद-गिरि का प्रदेश तो कुछ समय में यह वृद्ध तुम्हींको देता, और तुम उसमें चाहे जिस स्थान पर अच्छे पर्यंक पर सोते। फिर, ऐसे क्यों पड़े हो ? वत्स ! यह तो केवल तुम्हारी परीक्षा* थी, यह तुमने क्या किया !

इतने में एक सुन्दरी विमुक्त-कुन्तला—जोकि स्वयं राजकुमारी थी—दौड़ी हुई आई और उस शव को देखकर ठिठक गई, नत-जानु होकर उस पुरुष का—जो कि महाराज थे और जिसे इस समय तक राजकुमारी पहचान न सकी थी—चरण धरकर बोली—महात्मन् ! क्या इस व्यक्ति ने, जो यहाँ पड़ा है, मुझे कुछ देने के लिये आपको दिया है ? या कुछ कहा है ?

महाराज ने चुपचाप अपने वस्त्र में से एक वस्त्र का टुकड़ा निकालकर दे दिया। उसपर लाल अक्षरों में कुछ लिखा था। उस

---

* वास्तव में वह शब्द कुक्कुट का नहीं, बल्कि छद्मवेशिनी महारानी का था, जो कि बलवन्तसिंह-ऐसे दीन व्यक्ति से अपनी कुसुम-कुमारी का पाणिग्रहण करने की अभिलाषा नहीं रखती थी। किन्तु महाराज इससे अनभिज्ञ थे।

सुन्दरी ने उसे देखा और देखकर कहा—कृपया आप ही पढ़ दीजिये।

महाराज ने उसे पढ़ा। उसमें लिखा था—"मैं नहीं जानता था कि तुम इतनी निठुर हो। अस्तु; अब मैं यहीं रहूँगा; पर याद रखना, मैं तुमसे अवश्य मिलूँगा, क्योंकि मैं तुम्हें नित्य देखा चाहता हूँ; और ऐसे स्थान में देखूँगा, जहाँ कभी पलक गिरती ही नहीं।

तुम्हारा दर्शनाभिलाषी—
रसिया"

इसी समय महाराज को सुन्दरी पहचान गई, और फिर चरण धरकर बोली—पिताजी, क्षमा करना। और, शीघ्रतापूर्वक रसिया के कर-स्थित पात्र को लेकर अवशेष पी गई और गिर पड़ी। केवल उसके मुख से इतना निकला कि—'पिताजी, क्षमा करना।' महाराज देख रहे थे!

शरणागत

१

प्रभात-कालीन सूर्य की किरणें अभी पूर्व के आकाश में नहीं दिखाई पड़ती हैं। ताराओं का क्षीण प्रकाश अभी अम्बर में विद्यमान है। यमुना के तट पर दो-तीन रमणी खड़ी हैं, और दो—यमुना की उन्हीं क्षीण लहरियों में, जो कि चन्द्र के प्रकाश से रञ्जित हो रही हैं—स्नान कर रही हैं। अकस्मात् पवन बड़े वेग से चलने लगा। इसी समय एक सुन्दरी, जो कि बहुत ही कुमारी थी, उन्हीं तरल तरङ्गों में निमग्न हो गई। दूसरी, जो कि घबड़ाकर निकलना चाहती थी, किसी काठ का सहारा पाकर तट की ओर खड़ी हुई अपनी सखियों में जा मिली। पर वहाँ सुकुमारी नहीं थी। सब रोती हुई यमुना के तट पर घूमकर उसे खोजने लगीं।

अन्धकार हट गया। अब सूर्य भी दिखाई देने लगे। कुछ ही देर में उन्हें, घबड़ाई हुई स्त्रियों को आश्वासन देती हुई, एक छोटी-सी नाव दिखाई दी। उन सखियों ने देखा कि वह सुकुमारी उसी नाव पर एक अँग्रेज और एक लेडी के साथ बैठी हुई है।

तट पर आने पर मालूम हुआ कि सिपाही-विद्रोह की गड़बड़ से भागे हुए एक सम्भ्रान्त योरोपियन-दम्पति उस नौका के आरोही

हैं। उन्होंने सुकुमारी को डूबते हुए बचाया है और इसे पहुँचाने के लिये वे लोग यहाँ तक आये हैं।

सुकुमारी को देखते ही सब सखियों ने दौड़कर उसे घेर लिया और उससे लिपट-लिपटकर रोने लगीं। अँगरेज और लेडी दोनों ने जाना चाहा, पर वे स्त्रियाँ कब माननेवाली थीं? लेडी-साहिबा को रुकना पड़ा। थोड़ी देर में यह खबर फैल जाने से उस गाँव के जमींदार 'ठाकुर किशोरसिंह' भी उस स्थान पर आ गये। अब, उनके अनुरोध करने से, विलफर्ड और एलिस को उनका आतिथ्य स्वीकार करने के लिये विवश होना पड़ा; क्योंकि 'सुकुमारी' किशोरसिंह की ही स्त्री थी, जिसे उन लोगों ने बचाया था।

२

चन्दनपुर के ज़मीन्दार के घर में, जो यमुना-तट पर बना हुआ है, पाईं-बाग़ के भीतर, एक रविश में चार कुर्सियाँ पड़ी हैं। एक पर किशोरसिंह और दो कुर्सियों पर विलफर्ड और एलिस बैठे हैं, तथा चौथी कुर्सी के सहारे सुकुमारी खड़ी है। किशोर-सिंह मुस्किरा रहे हैं, और एलिस आश्चर्य की दृष्टि से सुकुमारी को देख रही है। विलफर्ड उदास है, और सुकुमारी मुख नीचा किये हुए है। सुकुमारी ने कनखियों से किशोरसिंह की ओर देखकर सिर झुका लिया।

एलिस—(किशोरसिंह से) बाबू साहब, आप इन्हें बैठने की इजाजत दें।

किशोरसिंह—मैं क्या मना करता हूँ?

एलिस—(सुकुमारी को देखकर) फिर यह क्यों नहीं बैठतीं ?

किशोरसिंह—आप कहिये, शायद बैठ जायँ।

विल्फर्ड—हाँ, आप क्यों खड़ी हैं ?

बेचारी सुकुमारी लज्जा से गड़ी जाती थी।

एलिस—(सुकुमारी की ओर देखकर) अगर आप न बैठेंगी, तो मुझे बहुत रंज होगा।

किशोरसिंह—यों न बैठेंगी, हाथ पकड़कर बिठलाइये।

एलिस सचमुच उठी, पर सुकुमारी एक बार किशोरसिंह की ओर वक्र दृष्टि से देखकर हँसती हुई पास की बारहदरी में भागकर चली गई, किन्तु एलिस ने पीछा न छोड़ा। वह भी वहाँ पहुँची, और उसे पकड़ा। सुकुमारी एलिस को देख गिड़गिड़ाकर बोली—क्षमा कीजिये, हम लोग पति के सामने कुर्सी पर नहीं बैठतीं, और न कुर्सी पर बैठने का अभ्यास ही है।

एलिस चुपचाप खड़ी रह गई, वह सोचने लगी कि—क्या सचमुच पति के सामने कुर्सी पर न बैठना चाहिये! फिर उसने सोचा—यह बेचारी जानती ही नहीं कि कुर्सी पर बैठने में क्या सुख है।

३

चन्दनपुर के ज़मीन्दार के यहाँ आश्रय लिये हुए योरोपियन-दम्पति सब प्रकार सुख से रहने पर भी सिपाहियों का अत्याचार सुनकर शंकित रहते थे। दयालु किशोरसिंह यद्यपि उन्हें बहुत आश्वासन देते, तो भी कोमल प्रकृति की सुन्दरी 'एलिस' सदा भयभीत रहती थी।

दोनों दम्पति कमरे में बैठे हुए यमुना का सुन्दर जल-प्रवाह देख रहे हैं। विचित्रता यह है कि 'सिगार' न मिल सकने के कारण विल्फर्ड साहब सटक के सड़ाके लगा रहे हैं। अभ्यास न होने के कारण सटक से उन्हें बड़ी अड़चन पड़ती थी, तिसपर सिपाहियों के अत्याचार का ध्यान उन्हें और भी उद्विग्न किये हुए था; क्योंकि एलिस का भय से पीत मुख उनसे देखा न जाता था।

इतने में बाहर कोलाहल सुनाई पड़ा। एलिस के मुख से 'Oh my God' निकल पड़ा! और भय से वह मूर्च्छित हो गई। विल्फर्ड और किशोरसिंह ने एलिस को पलँग पर लिटाया, और आप 'बाहर क्या है' सो देखने के लिये चले।

विल्फर्ड ने अपनी राइफ़ल हाथ में ली और साथ में जाना चाहा, पर किशोरसिंह ने उन्हें समझाकर बैठाया और आप खूँटी पर लटकती हुई तलवार लेकर बाहर निकल गये।

किशोरसिंह बाहर आये, देखा तो पाँच कोस पर जो उनका सुन्दरपुर ग्राम है, उसे सिपाहियों ने लूट लिया और प्रजा दुःखी होकर अपने जमींदार से अपनी दुःखगाथा सुनाने आई है। किशोरसिंह ने सबको आश्वासन दिया, और उनके खाने-पीने का प्रबन्ध करने के लिये कर्मचारियों को आज्ञा देकर आप विल्फर्ड और एलिस को देखने के लिये भीतर चले आये।

किशोरसिंह स्वाभाविक दयालु थे और उनकी प्रजा उन्हें पिता के समान मानती थी, और उनका उस प्रान्त में भी बड़ा सम्मान था। वह बहुत बड़े इलाकेदार होने के कारण छोटे-से राजा समझे जाते थे। उनका प्रेम सब पर बराबर था। किन्तु, विल्फर्ड

और सरला एलिस को भी वह बहुत चाहने लगे, क्योंकि उनकी प्रियतमा सुकुमारी की उन लोगों ने प्राणरक्षा की थी।

४

किशोरसिंह भीतर आये। एलिस को देखकर कहा—डरने की कोई बात नहीं है। वह मेरी प्रजा थी, समीप के सुन्दरपुर गाँव में वे सब रहते हैं। उन्हें सिपाहियों ने लूट लिया है। उनका बन्दोबस्त कर दिया गया है। अब उन्हें कोई तकलीफ़ नहीं है।

एलिस ने लम्बी साँस लेकर आँख खोल दी, और कहा—क्या वे सब गये?

सुकुमारी—घबड़ाओ मत, हम लोगों के रहते तुम्हारा कोई अनिष्ट नहीं हो सकता।

विल्फर्ड—क्या सिपाही रियासतों को लूट रहे हैं?

किशोरसिंह—हाँ, पर अब कोई डर नहीं है, वे लूटते हुए इधर से निकल गये।

विल्फर्ड—अब हमको कुछ डर नहीं है।

किशोरसिंह—आपने क्या सोचा?

विल्फर्ड—जब ये सब अपने भाइयों को लूटते हैं, तो शीघ्र ही अपने अत्याचार का फल पावेंगे और इनका किया कुछ न होगा।

किशोरसिंह ने गम्भीर होकर कहा—ठीक है।

एलिस ने कहा—मैं आज आप लोगों के सङ्ग भोजन करूँगी।

किशोरसिंह और सुकुमारी एक दूसरे का मुख देखने लगे। फिर किशोरसिंह ने कहा—बहुत अच्छा।

५

साफ़ दालान में दो कम्बल अलग-अलग दूरी पर बिछा दिये गये हैं। एक पर किशोरसिंह बैठे और दूसरे पर विल्फर्ड और एलिस; पर एलिस की दृष्टि बार-बार सुकुमारी को खोज रही थी, और वह बार-बार यही सोच रही थी कि किशोरसिंह के साथ सुकुमारी अभी नहीं बैठी।

थोड़ी देर में भोजन आया, पर खानसामा नहीं। स्वयं सुकुमारी एक थाल लिये है और तीन-चार औरतों के हाथ में भी खाद्य और पेय वस्तु है। किशोरसिंह के इशारा करने पर सुकुमारी ने वह थाल एलिस के सामने रखा, और इसी तरह विल्फर्ड और किशोरसिंह को परस दिया गया। पर किसी ने भोजन करना नहीं आरम्भ किया।

एलिस ने सुकुमारी से कहा—आप क्या यहाँ भी न बैठेंगी? क्या यहाँ भी कुर्सी है?

सुकुमारी—परसेगा कौन?

एलिस—खानसामा।

सुकुमारी—क्यों, क्या मैं नहीं हूँ?

किशोरसिंह—जिद न कीजिये, यह हमारे भोजन कर लेने पर भोजन करती हैं।

एलिस ने आश्चर्य और उदासी-भरी एक दृष्टि सुकुमारी पर डाली। एलिस को भोजन कैसा लगा, सो नहीं कहा जा सकता।

❀ ❀ ❀

भारत में शान्ति स्थापित हो गई है। अब विल्फर्ड और एलिस

अपनी नील की कोठी पर वापस जानेवाले हैं। चन्दनपुर में उन्हें बहुत दिन रहना पड़ा। नील कोठी वहाँ से दूर है।

दो घोड़े सजे-सजाये खड़े हैं और किशोरसिंह के आठ सशस्त्र सिपाही उनको पहुँचाने के लिये उपस्थित हैं। विल्फर्ड साहब किशोरसिंह से बातचीत करके छुट्टी पा चुके हैं। केवल एलिस अभी तक भीतर से नहीं आई। उन्हींके आने की देर है।

विल्फर्ड और किशोरसिंह पाईं-बाग़ में टहल रहे थे। इतने में सात-आठ स्त्रियों का झुण्ड मकान से बाहर निकला। हैं! यह क्या? एलिस ने अपना गाउन नहीं पहना, उसके बदले फ़ीरोज़ी रङ्ग के रेशमी कपड़े का कामदानी लहँगा और मखमल की कंचुकी, जिसके सितारे रेशमी ओढ़नी के ऊपर से चमक रहे हैं। हैं! यह क्या? स्वाभाविक अरुण अधरों में पान की लाली भी है! आँखों में काजल की रेखा भी है, चोटी भी फूलों से गूँधी जा चुकी है, और मस्तक में सुन्दर छोटा-सा बाल-अरुण की तरह बिन्दु भी तो है!

देखते ही किशोरसिंह खिलखिलाकर हँस पड़े, और विल्फर्ड तो भौंचक्के-से रह गये।

किशोरसिंह ने एलिस से कहा—आपके लिये भी घोड़ा तैयार है।

पर सुकुमारी ने कहा—नहीं, इनके लिये पालकी मँगा दो।

सिकन्दर की शपथ

१

सूर्य की चमकीली किरणों के साथ, यूनानियों के बरछे की चमक से 'मिंगलौर'-दुर्ग घिरा हुआ है। यूनानियों के दुर्ग तोड़नेवाले यंत्र दुर्ग की दीवालों से लगा दिये गये हैं, और वे अपना कार्य बड़ी शीघ्रता के साथ कर रहे हैं। दुर्ग की दीवाल का एक हिस्सा टूटा और यूनानियों की सेना उसी भग्न मार्ग से जयनाद करती हुई घुसने लगी। पर वह उसी समय पहाड़ से टकराये हुए समुद्र की तरह फिरा दी गई, और भारतीय युवक वीरों की सेना उनका पीछा करती हुई दिखाई पड़ने लगी। सिकंदर उनके प्रचण्ड अस्त्राघात को रोकता हुआ पीछे हटने लगा।

अफ़गानिस्तान में 'अश्वक' वीरों के साथ भारतीय वीर कहाँ से आ गये? यह शंका हो सकती है, किन्तु पाठकगण! वे निमंत्रित होकर उनकी रक्षा के लिये सुदूर से आये हैं, जोकि संख्या में केवल सात हजार होने पर भी ग्रीकों की असंख्य सेना को बराबर पराजित कर रहे हैं।

सिकन्दर को उस सामान्य दुर्ग के अवरोध में तीन दिन व्यतीत हो गये। विजय की सम्भावना नहीं है, सिकन्दर उदास होकर कैम्प में लौट आया और सोचने लगा। सोचने की बात ही है। गाज़ा और परसिपोलिस आदि के विजेता को अफ़गानिस्तान के एक छोटे-से दुर्ग के जीतने में इतना परिश्रम उठाकर भी

सफलता मिलती नहीं दिखाई देती, उलटे कई बार उसे अपमानित होना पड़ा।

बैठे-बैठे सिकन्दर को बहुत देर हो गई। अन्धकार फैलकर संसार को छिपाने लगा, जैसे कोई कपटाचारी अपनी मंत्रणा को छिपाता हो। केवल कभी-कभी दो-एक उल्लू उस भीषण रणभूमि में अपने भयावह शब्द को सुना देते हैं। सिकन्दर ने सीटी देकर कुछ इङ्गित किया, एक वीर पुरुष सामने दिखाई पड़ा। सिकन्दर ने उससे कुछ गुप्त बातें कीं, और वह चला गया। अन्धकार घनीभूत हो जाने पर सिकन्दर भी उसी ओर उठकर चला, जिधर वह पहला सैनिक जा चुका था।

२

दुर्ग के उस भाग में, जो टूट चुका था, बहुत शीघ्रता से काम लगा हुआ था, जो बहुत शीघ्र कल की लड़ाई के लिये प्रस्तुत कर दिया गया और सब लोग विश्राम करने के लिये चले गये। केवल एक मनुष्य उसी स्थान पर प्रकाश डालकर कुछ देख रहा है। वह मनुष्य कभी तो खड़ा रहता है और कभी अपनी प्रकाश फैलानेवाली मशाल को लिये हुए दूसरी ओर चला जाता है। उस समय उस घोर अन्धकार में उस भयावह दुर्ग की प्रकाण्ड छाया और भी स्पष्ट हो जाती है। उसी छाया में छिपा हुआ सिकन्दर खड़ा है। उसके हाथ में धनुष और बाण है, उसके सब अस्त्र उसके पास हैं। उसका मुख यदि कोई इस समय प्रकाश में देखता, तो अवश्य कहता कि यह कोई बड़ी भयानक बात सोच रहा है; क्योंकि उसका सुन्दर मुखमण्डल इस समय विचित्र

भावों से भरा है। अकस्मात् उसके मुख से एक प्रसन्नता का चीत्कार निकल पड़ा, जिसे उसने बहुत व्यग्र होकर छिपाया।

समीप की झाड़ी से एक दूसरा मनुष्य निकल पड़ा, जिसने आकर सिकन्दर से कहा—देर न कीजिये, क्योंकि यह वही है।

सिकन्दर ने धनुष को ठीक करके एक विषमय बाण उसपर जोड़ा और उसे उसी दुर्ग पर टहलते हुए मनुष्य की ओर लक्ष्य करके छोड़ा। लक्ष्य ठीक था, वह मनुष्य लुढ़ककर नीचे आ रहा। सिकन्दर और उसके साथी ने झट जाकर उसे उठा लिया, किन्तु उसके चीत्कार से दुर्ग पर का एक प्रहरी झुककर देखने लगा। उसने प्रकाश डालकर पूछा—कौन है?

उत्तर मिला—मैं दुर्ग से नीचे गिर पड़ा हूँ।

प्रहरी ने कहा—घबड़ाइये मत, मैं डोरी लटकाता हूँ।

डोरी बहुत जल्द लटका दी गई, अफ़गान वेशधारी सिकन्दर उसके सहारे ऊपर चढ़ गया। ऊपर जाकर सिकन्दर ने उस प्रहरी को भी नीचे गिरा दिया, जिसे उसके साथी ने मार डाला और उसका वेश आप लेकर उसी सीढ़ी से ऊपर चढ़ गया। जाने के पहले उसने अपनी छोटी-सी सेना को भी उसी जगह बुला लिया और धीरे-धीरे उसी रस्सी की सीढ़ी से वे सब ऊपर पहुँचा दिये गये।

३

दुर्ग के प्रकोष्ठ में सर्दार की सुन्दरी पत्नी बैठी हुई है। मदिराविलोल दृष्टि से कभी दर्पण में अपना सुन्दर मुख और कभी अपने नवीन नील वसन को देख रही है। उसका मुख

लालसा की मदिरा से चमक-चमककर उसकी ही आँखो में चका-चौंध पैदा कर रहा है। अकस्मात् 'प्यारे सर्दार' कहकर वह चौंक पड़ी, पर उसकी प्रसन्नता उसी क्षण बदल गई जब उसने सर्दार के वेष में दूसरे को देखा। सिकन्दर का मानुषिक सौन्दर्य कुछ कम नहीं था, अबला-हृदय को और भी दुर्बल बना देने के लिये वह पर्याप्त था। एक दूसरे को निर्निमेष दृष्टि से देखने लगे। पर अफ़गान-रमणी की शिथिलता देर तक न रही, इसने हृदय के सारे बल को एकत्र करके पूछा— तुम कौन हो?

उत्तर मिला—शाहंशाह सिकन्दर।

रमणी ने पूछा—यह वस्त्र किस तरह मिला?

सिकन्दर ने कहा—सर्दार को मार डालने से।

रमणी के मुख से चीत्कार के साथ ही निकल पड़ा—क्या सर्दार मारा गया?

सिकन्दर—हाँ, अब वह इस लोक में नहीं है।

रमणी ने अपना मुख दोनों हाथों से ढाँक लिया, पर उसी क्षण उसके हाथ में एक चमकता हुआ छुरा दिखाई देने लगा!

सिकन्दर घुटने के बल बैठ गया और बोला— सुन्दरी! एक जीव के लिये तुम्हारी दो तलवारें बहुत थीं, फिर तीसरी की क्या आवश्यकता है?

रमणी की दृढ़ता हट गई, और न जाने क्यों उसके हाथ का छुरा छूटककर गिर पड़ा; वह भी घुटनों के बल बैठ गई।

सिकन्दर ने उसका हाथ पकड़कर उठाया। अब उसने देखा कि सिकन्दर अकेला नहीं है, उसके बहुत-से सैनिक दुर्ग पर दिखाई

दे रहे हैं। रमणी ने अपना हृदय दृढ़ किया और सन्दूक खोलकर एक जवाहिरात का डब्बा ले आकर सिकन्दर के आगे रखा। सिकन्दर ने उसे देखकर कहा—मुझे इसकी आवश्यकता नहीं है, दुर्ग पर मेरा अधिकार हो गया, इतना ही बहुत है।

दुर्ग के सिपाही, यह देखकर कि शत्रु भीतर आ गया है, अस्त्र लेकर मारकाट करने पर तैयार हो गये। पर सर्दार-पत्नी ने उन्हें मना किया, क्योंकि उसे बतला दिया गया था कि सिकन्दर की विजयवाहिनी दुर्ग के द्वार पर खड़ी है।

सिकन्दर ने कहा—तुम घबड़ाओ मत, जिस तरह से तुम्हारी इच्छा होगी, उसी प्रकार सन्धि के नियम बनाये जायँगे। अच्छा, अब मैं जाता हूँ।

सिकन्दर को थोड़ी दूर तक सर्दार-पत्नी पहुँचा गई। सिकन्दर थोड़ी सेना छोड़कर आप अपने शिविर में चला गया।

४

सन्धि हो गई। सर्दार-पत्नी ने स्वीकार कर लिया कि दुर्ग सिकन्दर के अधीन होगा। सिकन्दर ने भी उसीको यहाँ की रानी बनाया और कहा—भारतीय योद्धा जो तुम्हारे यहाँ आये हैं, वे अपने देश को लौटकर चले जायँ। मैं उनके जाने में किसी प्रकार की बाधा न डालूँगा। सब बातें शपथपूर्वक स्वीकार कर ली गईं।

राजपूत वीर अपने परिवार के साथ उस दुर्ग से निकल पड़े, स्वदेश की ओर चलने के लिये तैयार हुए। दुर्ग के समीप ही मे एक पहाड़ी पर उन्होंने अपना डेरा जमाया, और भोजन करने का प्रबन्ध करने लगे।

भारतीय रमणियाँ जब अपने प्यारे पुत्रों और पतियों के लिये भोजन प्रस्तुत कर रही थीं, तो उनमें उस अफ़गान-रमणी के बारे में बहुत बातें हो रही थीं; और वे सब उसे बड़ी घृणा की दृष्टि से देखने लगीं; क्योंकि उसने एक पति-हत्याकारी को आत्म-समर्पण कर दिया था। भोजन के उपरान्त जब सब सैनिक विश्राम करने लगे, तो युद्ध की बातें कहकर अपने चित्त को प्रसन्न करने लगे। थोड़ी देर नहीं बीती थी कि एक ग्रीक अश्वारोही उनके समीप आता दिखाई पड़ा, जिसे देखकर एक राजपूत युवक उठ खड़ा हुआ और उसकी प्रतीक्षा करने लगा।

ग्रीक सैनिक उसके समीप आकर बोला—शाहंशाह सिकन्दर ने तुम लोगों को दया करके अपनी सेना में भरती करने का विचार किया है, आशा है कि इस संवाद से तुम लोग बहुत प्रसन्न होंगे।

युवक बोल उठा—इस दया के लिये हम लोग कृतज्ञ हैं, पर अपने भाइयों पर अत्याचार करने में ग्रीकों का साथ देने के लिये हम लोग कभी प्रस्तुत नहीं हैं।

ग्रीक—तुम्हें प्रस्तुत होना चाहिये, क्योंकि यह शाहंशाह सिकन्दर की आज्ञा है।

युवक—नहीं महाशय, क्षमा कीजिये। हम लोग आशा करते हैं कि सन्धि के अनुसार हम लोग अपने देश को शांतिपूर्वक लौट जायँगे, इसमें बाधा न डाली जायगी।

ग्रीक—क्या तुम लोग इस बात पर दृढ़ हो? एक बार और विचारकर उत्तर दो; क्योंकि इसी उत्तर पर तुम लोगों का जीवन-मरण निर्भर होगा।

इसपर कुछ राजपूतों ने समवेत स्वर से कहा—हाँ-हाँ, हम अपनी बात पर दृढ़ हैं; किन्तु सिकन्दर, जिसने देवताओं के नाम से शपथ ली है, अपनी शपथ को न भूलेगा।

ग्रीक—सिकन्दर ऐसा मूर्ख नहीं है कि आये हुए शत्रुओं को और दृढ़ होने का अवकाश दे। अस्तु, अब तुम लोग मरने के लिये तैयार हो।

इतना कहकर वह ग्रीक अपने घोड़े को घुमाकर सीटी बजाने लगा, जिसे सुनकर अगणित ग्रीक-सेना उन थोड़े-से हिन्दुओं पर टूट पड़ी।

इतिहास इस बात का साक्षी है कि उन्होंने प्राण-पण से युद्ध किया, और जब तक कि उनमें एक भी बचा, बराबर लड़ता गया। क्यों न हो, जब उनकी प्यारी स्त्रियाँ उन्हें अस्त्रहीन देखकर तलवार देती थीं और हँसती हुई अपने प्यारे पतियों की युद्ध-क्रिया देखती थीं। रणचण्डियाँ भी अकर्मण्य न रहीं, जीवन देकर अपना धर्म रखा। ग्रीकों की तलवारों ने उनके बच्चों को भी रोने न दिया, क्योंकि पिशाच सैनिकों के हाथ सभी मारे गये।

अज्ञात स्थान में निराश्रय होकर उन सब वीरों ने प्राण दिये। भारतीय लोग उनका नाम भी नहीं जानते!

चित्तौर-उद्धार

१

दीपमालाएँ आपस में कुछ हिल-हिलकर इङ्गित कर रही हैं, किन्तु मौन हैं। सज्जित मन्दिर में लगे हुए चित्र एकटक एक दूसरे को देख रहे हैं, शब्द नहीं है। शीतल समीर आता है, किन्तु धीरे से वातायन-पथ के पार हो जाता है, दो सजीव चित्रों को देखकर वह कुछ कह नहीं सकता है। पर्यङ्क पर भाग्यशाली मस्तक उन्नत किये हुए चुपचाप बैठा हुआ युवक, स्वर्ण-पुत्तली की ओर देख रहा है, जो कोने में निर्वात दीपशिखा की तरह प्रकोष्ठ को आलोकित किये हुए है। नीरवता का सुन्दर दृश्य, भावविभोर होने का प्रत्यक्ष प्रमाण, स्पष्ट उस गृह में आलोकित हो रहा है।

अकस्मात् गम्भीर कण्ठ से युवक उद्वेग में भर बोल उठा—सुन्दरी ! आज से तुम मेरी धर्म-पत्नी हो, फिर मुझसे सङ्कोच क्यों ?

युवती कोकिल स्वर से बोली—महाराजकुमार ! यह आपकी दया है जो दासी को अपनाना चाहते हैं, किन्तु वास्तव में दासी आपके योग्य नहीं है।

युवक—मेरी धर्मपरिणीता वधू, मालदेव की कन्या अवश्य मेरे योग्य है। यह चाटूक्ति मुझे पसन्द नहीं। तुम्हारे पिता ने, यद्यपि वह मेरे चिरशत्रु हैं, तुम्हारे ब्याह के लिये नारियल भेजा, और मैंने राजपूत-धर्मानुसार उसे स्वीकार किया; फिर भी तुम्हारी-

ऐसी सुन्दरी को पाकर हम प्रवञ्चित नहीं हुए, और इसी अवसर पर अपने पूर्व-पुरुषों की जन्मभूमि का भी दर्शन मिला।

उदारहृदय राजकुमार! मुझे क्षमा कीजिये। देवता से छलना मनुष्य नहीं कर सकता। मैं इस सम्मान के योग्य नहीं कि पर्यङ्क पर बैठूँ, किन्तु चरण-प्रान्त में बैठकर एक बार नारी-जीवन का स्वर्ग-भोग कर लेने में आपके ऐसे देवता बाधा न देंगे।

इतना कहकर युवती ने पर्यङ्क से लटकते हुए राजकुमार के चरणों को पकड़ लिया।

वीर कुमार हम्मीर अवाक् होकर देखने लगे। फिर उसका हाथ पकड़कर पास में बैठा लिया।

राजकुमारी शीघ्रता से उतरकर पलँग के नीचे बैठ गई।

दाम्पत्य सुख से अपरिचित कुमार की भवें कुछ चढ़ गईं, किन्तु उसी क्षण यौवन के नवीन उल्लास ने उन्हें उतार दिया। हम्मीर ने कहा—फिर क्यों तुम इतना उत्कण्ठित कर रही हो? सुन्दरी! कहो, बात क्या है?

राजकुमारी—मैं विधवा हूँ। सात वर्ष की अवस्था में सुना है कि मेरा ब्याह हुआ और आठवें वर्ष विधवा हुई! यह भी सुना है कि विधवा का शरीर अपवित्र होता है। तब, जगत्पवित्र शिशौदिया-कुल के कुमार को छूने का कैसे साहस कर सकती हूँ?

हम्मीर—हैं! क्या तुम विधवा हो? फिर तुम्हारा ब्याह पिता ने क्यों किया?

राजकुमारी—केवल देवता को अपमानित करने के लिये।

हम्मीर की तलवार में स्वयं एक झनकार उत्पन्न हुई। फिर

भी उन्होंने शान्त होकर कहा—अपमान इससे नहीं होता, किन्तु परिणीता वधू को छोड़ देने में अवश्य अपमान है।

राजकुमारी—प्रभो! पतिता को लेकर आप क्यों कलंकित होते हैं?

हम्मीर ने मुस्कुराकर कहा—ऐसे निर्दोष और सच्चे रत्न को लेकर कौन कलङ्कित हो सकता है?

राजकुमारी संकुचित हो गई। हम्मीर ने हाथ पकड़कर उठाकर पलँग पर बैठाया, और कहा—आओ; तुम्हें, मुझ से—समाज, संसार—कोई भी नहीं अलग कर सकता।

राजकुमारी ने वाष्परुद्ध कंठ से कहा—इस अनाथिनी को सनाथ करके आपने चिर-ऋणी बनाया, और विह्वल होकर हम्मीर के अंक में सिर रख दिया।

२

कैलवाड़ा-प्रदेश के छोटे-से दुर्ग के एक प्रकोष्ठ में राजकुमार हम्मीर बैठे हुए चिन्ता में निमग्न हैं। सोच रहे थे—जिस दिन मुञ्ज का सिर मैंने काटा, उसी दिन एक भारी बोझ मेरे सिर दिया गया, वह पितृव्य का दिया हुआ महाराणा-वंश का राज-तिलक है; उसका पूरा निर्वाह जीवन-भर करना कर्तव्य है। चित्तौर का उद्धार करना ही मेरा प्रधान लक्ष्य है। पर देखूँ ईश्वर कैसे इसे पूरा करता है। इस छोटी-सी सेना से, यथोचित धन का अभाव रहते, वह क्योंकर हो सकता है। रानी मुझे चिन्ताग्रस्त देखकर यही समझती है कि विवाह ही मेरे चिन्तित होने का कारण है। मैं उसकी ओर देखकर मालदेव पर कोई अत्याचार करने पर संकुचित

होता हूँ। ईश्वर की कृपा से एक पुत्र भी हुआ; किन्तु मुझे नित्य चिन्तित देखकर रानी पिता के यहाँ चली गई है। यद्यपि, देवता-पूजन करने के लिये ही वहाँ उनका जाना हुआ है; किन्तु मेरी उदासीनता भी कारण है। भगवान एकलिंगेश्वर कैसे इस दुःसाध्य कार्य को पूर्ण करते हैं, यह वही जानें।

इसी तरह के अनेक विचार-तरङ्ग मानस में उठ रहे थे। संध्या की शोभा सामने की गिरिश्रेणी पर अपनी लीला दिखा रही है, किन्तु चिंतित हम्मीर को उसका आनंद नहीं। देखते-देखते अंधकार ने गिरिप्रदेश को ढँक लिया। हम्मीर उठे, वैसे ही द्वारपाल ने आकर कहा—महाराज विजयी हों। चित्तौर से एक सैनिक, महारानी का भेजा हुआ, आया है।

थोड़ी ही देर में सैनिक लाया गया और अभिवादन करने के बाद उसने एक पत्र हम्मीर के हाथ में दिया। हम्मीर ने उसे लेकर सैनिक को बिदा किया, और पत्र पढ़ने लगे—

प्राणनाथ जीवनसर्वस्व के चरणों में

कोटिशः प्रणाम—

देव! आपकी कृपा ही मेरे लिये कुशल है। मुझे यहाँ आये इतने दिन हुए, किंतु एक बार भी आपने पूछा नहीं। इतनी उदासीनता क्यों? क्या, साहस में भरकर जो मुझे आपने स्वीकार किया, उसका प्रतिकार कर रहे हैं? देवता! ऐसा न चाहिये। मेरा अपराध ही क्या? मैं आपका चिन्तित मुख नहीं देख सकती इसी लिए कुछ दिनों के लिए यहाँ चली आई हूँ; किन्तु विना उस मुख के देखे भी शान्ति नहीं। अब कहिये, क्या करूँ? देव!

जिस भूमि की दर्शनाभिलाषा ने ही आपको मुझसे ब्याह करने के लिये बाध्य किया, उसी भूमि में आने से मेरा हृदय अब कहता है कि आप ब्याह करके नहीं पश्चात्ताप कर रहे हैं; किन्तु आपकी उदासीनता केवल चित्तौर-उद्धार के लिये है। मैं इसमें बाधा-स्वरूप आपको दिखाई पड़ती हूँ। मेरे ही स्नेह से आप पिता के ऊपर चढ़ाई नहीं कर सकते, और पितरों के ऋण से उद्धार नहीं पा रहे हैं। इस जन्म में तो आपसे उद्धार नहीं हो सकती और होने की इच्छा भी नहीं—कभी, किसी भी जन्म में। चित्तौर-अधिष्ठात्री देवी ने मुझे स्वप्न में जो आज्ञा दी है, मैं उसी कार्य के लिये रुकी हूँ। पिता इस समय चित्तौर में नहीं हैं, इससे यह न समझिये कि मैं आपको कादर समझती हूँ; किंतु इसलिये कि युद्ध में उनके न रहने से उनकी कोई शारीरिक क्षति नहीं होगी। मेरे कारण जिसे आप बचाते हैं, वह बात बच जायगी। सर्दारों से रक्षित चित्तौर-दुर्ग के वीर सैनिकों के साथ सन्मुख युद्ध में इस समय आप विजय प्राप्त कर सकते हैं; मुझे निश्चय है, भवानी आपकी रक्षा करेगी। और, मुझे चित्तौर से अपने साथ लिवा न जाकर यहीं सिंहासन पर बैठिये। दासी, चरण-सेवा करके, कृतार्थ होगी।

३

चित्तौर-दुर्ग के सिंहद्वार पर एक सहस्र राजपूत-सवार और उतने ही भील-धनुर्धर पदातिक उन्मुक्त शस्त्र लिये हुए 'महाराणा हम्मीर की जय' का भीमनाद कर रहे हैं।

दुर्ग-रक्षक सचेष्ट होकर बुर्जियों पर से अग्निवर्षा करा रहा है;

किन्तु इन दृढ़प्रतिज्ञ वीरों को हटाने में असमर्थ है। दुर्गद्वार बन्द है। आक्रमणकारियों के पास दुर्गद्वार तोड़ने का कोई साधन नहीं है, तो भी वे अदम्य उत्साह से आक्रमण कर रहे हैं। वीर हम्मीर कतिपय उत्साही वीरों के साथ अग्रसर होकर प्राचीर पर चढ़ने का उद्योग करने लगे, किन्तु व्यर्थ; कोई फल नहीं हुआ। भीलों की बाणवर्षा से हम्मीर का शत्रुपक्ष निर्बल होता था, पर वे सुरक्षित थे। चारो ओर भीषण हत्याकाण्ड हो रहा है। अकस्मात् दुर्ग का सिंहद्वार सशब्द खुला।

हम्मीर की सेना ने समझा कि शत्रु मैदान में युद्ध करने के लिये आ गये, बड़े उल्लास से आक्रमण किया गया। किन्तु देखते हैं तो सामने एक सौ क्षत्राणियाँ हाथ में तलवार लिये हुए दुर्ग के भीतर खड़ी हैं! हम्मीर पहले तो संकुचित हुए, फिर जब देखा कि स्वयं राजकुमारी ही उन क्षत्राणियों की नेतृ हैं और उनके हाथ में भी तलवार है, तो वह आगे बढ़े। राजकुमारी ने प्रणाम करके तलवार महाराणा के हाथों में दे दिया; राजपूतों ने भीमनाद के साथ 'एकलिंग की जय' घोषित किया।

वीर हम्मीर अग्रसर नहीं हो रहे हैं। दुर्गरक्षक ससैन्य उसी स्थान पर आ गया, किन्तु वहाँ का दृश्य देखकर वह भी अवाक् हो गया। हम्मीर ने कहा—सेनापते! मैं इसी तरह दुर्ग-अधिकार पा तुम्हें बन्दी नहीं करना चाहता, तुम ससैन्य स्वतंत्र हो। यदि इच्छा हो तो युद्ध करो! चित्तौर-दुर्ग राणा-वंश का है। यदि हमारा होगा, तो एकलिङ्ग-भगवान की कृपा से उसे हम हस्तगत करेंहींगे।

दुर्ग-रक्षक ने कुछ सोचकर कहा—भगवान की इच्छा है कि आपको आपका पैतृक दुर्ग मिले, उसे कौन रोक सकता है। सम्भव है कि इसमें राजपूतों की भलाई हो। इससे बन्धुओं का रक्तपात हम नहीं कराना चाहते। आपको चित्तौर का सिंहासन सुखद हो, देश की श्रीवृद्धि हो, हिन्दुओं का सूर्य मेवाड़-गगन में एक बार फिर उदित हो।

भील, राजपूत, शत्रुओं ने मिलकर महाराणा का जय-नाद किया। दुन्दुभी बज उठी। मंगल-गान के साथ सपत्नीक हम्मीर पैतृक सिंहासन पर आसीन हुए। अभिवादन ग्रहण कर लेने पर महाराणा ने महिषी से कहा—क्या अब भी तुम कहोगी कि तुम हमारे योग्य नहीं हो?

अशोक

१

पूत-सलिला भागीरथी के तट पर चन्द्रालोक में महाराज चक्रवर्ती अशोक टहल रहे हैं। थोड़ी दूर पर एक युवक खड़ा है। सुधाकर की किरणों के साथ नेत्र-ताराओं को मिलाकर स्थिर दृष्टि से महाराज ने कहा—विजयकेतु, क्या यह बात सच है कि जैन लोगों ने हमारे बौद्ध-धर्माऽचार्य होने का जनसाधारण में प्रवाद फैलाकर उन्हें हमारे विरुद्ध उत्तेजित किया है और पौण्ड्रवर्धन में एक बुद्धमूर्त्ति तोड़ी गई है?

विजय०—महाराज, क्या आपसे भी कोई झूठ बोलने का साहस कर सकता है?

अशोक—मनुष्य के कल्याण के लिये हमने जितना उद्योग किया, क्या वह सब व्यर्थ हुआ? बौद्धधर्म को हमने क्यों प्रधानता दी? इसी लिये कि शान्ति फैलेगी, देश में द्वेष का नाम भी न रहेगा; और उसी शान्ति की छाया में समाज अपने वाणिज्य, शिल्प और विद्या की उन्नति करेगा। पर नहीं, हम देख रहे हैं कि हमारी कामना पूर्ण होने में अभी अनेक बाधाएँ हैं। हमें पहले उन्हें हटाकर मार्ग प्रशस्त करना चाहिये।

विजय०—देव! आपकी क्या आज्ञा है?

अशोक—विजयकेतु, भारत में एक समय वह था जब कि इसी अशोक के नाम से लोग काँप उठते थे। क्यों? इसी लिये कि वह बड़ा कठोर शासक था। पर वही अशोक जब से बौद्ध

कहकर सर्वत्र प्रसिद्ध हुआ है, उसके शासन को लोग कोमल कहकर भूलने लग गये हैं। अस्तु, तुमको चाहिये कि अशोक का आतङ्क एक बार फिर फैला दो; और यह आज्ञा प्रचारित कर दो कि जो मनुष्य जैनों का साथी होगा, वह अपराधी होगा; और जो एक जैन का सिर काट लावेगा, वह पुरस्कृत किया जावेगा।

विजयकेतु—(काँपकर) जो महाराज की आज्ञा।

अशोक—जाओ, शीघ्र जाओ।

विजयकेतु चला गया। महाराज अभी वहीं खड़े हैं। नूपुर का कल नाद सुनाई पड़ा। अशोक ने चौंककर देखा, तो बीस-पचीस दासियों के साथ महारानी तिष्यरक्षिता चली आ रही हैं।

अशोक—प्रिये! तुम यहाँ कैसे?

तिष्य०—प्राणनाथ! शरीर से कहीं छाया अलग रह सकती है? बहुत देर हुई, मैंने सुना था कि आप आ रहे हैं; पर बैठे-बैठे जी घबड़ा गया कि आने में क्यों देर हो रही है। फिर दासी से ज्ञात हुआ कि आप महल के नीचे बहुत देर से टहल रहे हैं। इसी लिये मैं स्वयं आपके दर्शन के लिये चली आई। अब भीतर चलिये।

अशोक—मैं तो आ ही रहा था। अच्छा, चलो।

अशोक और तिष्यरक्षिता समीप के सुन्दर प्रासाद की ओर बढ़े। दासियाँ पीछे थीं।

२

राजकीय कानन में अनेक प्रकार के वृक्ष, सुरभित सुमनों से भरे, झूम रहे हैं। कोकिला भी कूक-कूक कर आम की डालों को

हिलाये देती है। नव वसन्त का समागम है। मलयानिल इठलाता हुआ कुसुम-कलियों को ठुकराता जा रहा है।

इसी समय कानन-निकटस्थ शैल के झरने के पास बैठकर एक युवक जल-लहरियों की तरङ्ग-भङ्गी देख रहा है। युवक बड़े सरल विलोकन से कृत्रिम जलप्रपात को देख रहा है। उसकी मनोहर लहरियाँ, जो बहुत ही जल्दी-जल्दी लीन हो स्रोत में मिलकर सरल पथ का अनुकरण करती हैं, उसे बहुत ही भली मालूम हो रही हैं। पर युवक को यह नहीं मालूम कि उसकी सरल दृष्टि और सुन्दर अवयव से विवश होकर एक रमणी अपने परम पवित्र पद से च्युत होना चाहती है।

देखो, उस लता-कुञ्ज में, पत्तियों की ओट में, दो नीलमणि के समान कृष्ण-तारा चमककर किसी अद्भुत आश्चर्य का पता बता रहे हैं! नहीं-नहीं, देखो, चन्द्रमा में भी कहीं तारा रहते हैं? वह तो किसी सुन्दरी के मुख-कमल का आभास है।

युवक अपने आनन्द में मग्न है। उसे इसका कुछ भी ध्यान नहीं है कि कोई व्याध उसकी ओर अलक्षित होकर बाण चला रहा है। युवक उठा, और उसी कुञ्ज की ओर चला। किसी प्रच्छन्न शक्ति की प्रेरणा से वह उसी लता-कुञ्ज की ओर बढ़ा। किन्तु उसकी दृष्टि वहाँ जब भीतर पड़ी, तो वह अवाक् हो गया। उसके दोनों हाथ आप जुट गये। उसका सिर स्वयं अवनत हो गया।

रमणी स्थिर होकर खड़ी थी। उसके हृदय में उद्वेग और शरीर में कम्प था। धीरे-धीरे उसके होंठ हिले और कुछ मधुर

शब्द निकले। पर वे शब्द स्पष्ट होकर वायुमण्डल में लीन हो गये। युवक का सिर नीचे ही था। फिर युवती ने अपने को सँभाला, और बोली—कुनाल, तुम यहाँ कैसे ? अच्छे तो हो ?

माताजी की कृपा से—उत्तर में कुनाल ने कहा।

युवती मंद मुस्कान के साथ बोली—मैं तुम्हें बहुत देर से यहाँ छिपकर देख रही हूँ।

कुनाल—महारानी तिष्यरक्षिता को छिपकर मुझे देखने की क्या आवश्यकता है ?

तिष्य०—(कुछ कम्पित स्वर से) तुम्हारे सौन्दर्य से विवश होकर।

कुनाल—(विस्मित तथा भीत होकर) पुत्र का सौन्दर्य तो माता ही का दिया हुआ है।

तिष्य०—नहीं कुनाल, मैं तुम्हारी प्रेम-भिखारिनी हूँ, राजा-रानी नहीं हूँ; और न तुम्हारी माता हूँ।

कुनाल—(कुञ्ज से बाहर निकलकर) माताजी, मेरा प्रणाम ग्रहण कीजिये, और अपने इस पाप का शीघ्र प्रायश्चित्त कीजिये। जहाँ तक सम्भव होगा, अब आप इस पाप-मुख को कभी न देखेंगी।

इतना कहकर शीघ्रता से वह युवक राजकुमार कुनाल, अपनी विमाता की बात सोचता हुआ, उपवन के बाहर निकल गया। पर तिष्यरक्षिता किंकर्त्तव्यविमूढ़ होकर वहीं तब तक खड़ी रही, जब तक किसी दासी के भूषण-शब्द ने उसकी मोहनिद्रा को भङ्ग नहीं किया।

३

श्रीनगर के समीपवर्त्ती कानन में एक कुटीर के द्वार पर कुनाल बैठा हुआ ध्यानमग्न है। उसकी सुशील पत्नी उसी कुटीर में कुछ भोजन बना रही है।

कुटीर स्वच्छ तथा उसकी भूमि परिष्कृत है। शान्ति की प्रबलता के कारण पवन भी उस समय धीरे-धीरे चल रहा है।

किन्तु वह शान्ति देर तक न रही, क्योंकि एक दौड़ता हुआ मृगशावक कुनाल की गोद में आ गिरा, जिससे उसके ध्यान में विघ्न हुआ, और वह खड़ा हो गया। कुनाल ने उस मृग-शावक को देखकर समझा कि कोई व्याध भी इसके पीछे आता ही होगा। पर जब कोई उसे न देख पड़ा, तो उसने उस मृगशावक को अपनी स्त्री 'धर्मरक्षिता' को देकर कहा—प्रिये! क्या तुम इसको बच्चे की तरह पालोगी?

धर्मरक्षिता—प्राणनाथ, हमारे ऐसे वनचारियों को ऐसे ही बच्चे चाहिये।

कुनाल—प्रिये! तुमको हमारे साथ बहुत कष्ट है।

धर्मरक्षिता—नाथ, इस स्थान पर यदि सुख न मिला, तो मैं समझूँगी कि संसार में कहीं भी सुख नहीं है।

कुनाल—किन्तु प्रिये, क्या तुम्हें वे सब राजसुख याद नहीं आते? क्या उनकी स्मृति तुम्हें नहीं सताती? और, क्या तुम अपनी मर्म-वेदना से निकलते हुए आँसुओं को रोक नहीं लेतीं? या वे सचमुच हैं ही नहीं?

धर्मरक्षिता—प्राणाधार! कुछ नहीं है। यह सब आपका भ्रम

है। मेरा हृदय जितना इस शान्त वन में आनन्दित है, उतना कहीं भी न रहा। भला ऐसे स्वभाव-वर्धित सरल-सीधे और सुमन वाले साथी कहाँ मिलते? ऐसी मृदुला लताएँ, जो अनायास ही चरण को चूमती हैं, कहाँ उस जन-रव से भरे राजकीय नगर में मिली थीं? नाथ, और सच कहना, (मृग को चूमकर) ऐसा प्यारा शिशु भी तुम्हें आज तक कहीं मिला था? तिस पर भी आपको अपनी विमाता की कृपा से जो दुख मिलता था, वह भी यहाँ नहीं है। फिर ऐसा सुखमय जीवन और कौन होगा?

कुनाल के नेत्र आँसुओं से भर आये, और वह उठकर टहलने लगे। धर्मरक्षिता भी अपने कार्य में लगी। मधुर पवन भी उस भूमि में उसी प्रकार चलने लगा। कुनाल का हृदय अशान्त हो उठा, और वह टहलता हुआ कुछ दूर निकल गया। जब नगर का समीपवर्त्ती प्रान्त उसे दिखाई पड़ा, तो वह रुक गया और उसी ओर देखने लगा।

४

पाँच-छः मनुष्य दौड़ते हुए चले आ रहे हैं। वे कुनाल के पास पहुँचना ही चाहते थे कि उनके पीछे बीस अश्वारोही देख पड़े। वे सब-के-सब कुनाल के समीप पहुँचे। कुनाल चकित दृष्टि से उन सबको देख रहा था।

आगे दौड़कर आनेवालों ने कहा—महाराज, हमलोगों को बचाइये।

कुनाल उन लोगों को पीछे करके आप आगे डटकर खड़ा हो गया। वे अश्वारोही भी उस युवक कुनाल के अपूर्व तेजोमय

स्वरूप को देखकर, सहमकर, उसी स्थान पर खड़े हो गये। कुनाल ने उन अश्वारोहियों से पूछा—तुम लोग इन्हें क्यों सता रहे हो? क्या इन लोगों ने कोई ऐसा कार्य किया है, जिससे ये लोग न्यायतः दण्डभागी समझे गये हैं?

एक अश्वारोही, जो उन लोगों का नायक था, बोला—हम लोग राजकीय सैनिक हैं और राजा की आज्ञा से इन विधर्मी जैनियों का बध करने के लिये आये हैं। पर आप कौन हैं जो महाराज चक्रवर्त्ती देवप्रिय अशोकदेव की आज्ञा का विरोध करने पर उद्यत हैं?

कुनाल—चक्रवर्त्ती अशोक! वह कितना बड़ा राजा है?

नायक—मूर्ख! क्या तू अभी तक महाराज अशोक का पराक्रम नहीं जानता, जिन्होंने अपने प्रचण्ड भुजदण्ड के बल से कलिङ्ग-विजय किया है? और, जिनकी राज्यसीमा दक्षिण में केरल और मलयगिरि, उत्तर में सिन्धुकोश-पर्वत, तथा पूर्व और पश्चिम में किरात-देश और पटल है! जिनकी मैत्री के लिये यवन-नृपति लोग उद्योग करते रहते हैं, उन महाराज को तू भलीभाँति नहीं जानता?

कुनाल—परन्तु इससे भी बड़ा कोई साम्राज्य है, जिसके लिये किसी राज्य की मैत्री की आवश्यकता नहीं है।

नायक—इस विवाद की आवश्यकता नहीं है, हम अपना काम करेंगे?

कुनाल—तो क्या तुम लोग इन अनाथ जीवों पर कुछ दया न करोगे?

छाया

इतना कहते-कहते राजकुमार को कुछ क्रोध आ गया, नेत्र लाल हो गये। नायक उस तेजस्वी मूर्त्ति को देखकर एक बार फिर सहम गया।

कुनाल ने कहा—अच्छा, यदि तुम न मानोगे, तो यहाँ के शासक से जाकर कहो कि राजकुमार कुनाल तुम्हें बुला रहे हैं।

नायक सिर झुकाकर कुछ सोचने लगा। तब उसने अपने एक साथी की ओर देखकर कहा—जाओ, इन बातों को कहकर, दूसरी आज्ञा लेकर जल्द आओ।

अश्वारोही शीघ्रता से नगर की ओर चला। शेष सब लोग उसी स्थान पर खड़े थे।

थोड़ी देर में उसी ओर से दो अश्वारोही आते हुए दिखाई पड़े। एक तो वही था, जो भेजा गया था, और दूसरा उस प्रदेश का शासक था। समीप आते ही वह घोड़े पर से उतर पड़ा और कुनाल को अभिवादन करने के लिये बढ़ा। पर कुनाल ने रोककर कहा—बस, हो चुका, मैंने आपको इसलिये कष्ट दिया है कि इन निरीह मनुष्यों की क्यों हिंसा की जा रही है?

शासक—राजकुमार! आपके पिता की आज्ञा ही ऐसी है, और आपका यह वेश क्यों है?

कुनाल—इसके पूछने की कोई आवश्यकता नहीं, पर क्या तुम इन लोगों को मेरे कहने से छोड़ सकते हो?

शासक—(दुःखित होकर) राजकुमार, आपकी आज्ञा हम कैसे टाल सकते हैं, (ठहरकर) पर एक और बड़े दुःख की बात है।

कुनाल—वह क्या ?

शासक ने एक पत्र अपने पास से निकालकर कुनाल को दिखलाया। कुनाल उसे पढ़कर चुप रहा, और थोड़ी देर के बाद बोला—तो तुमको इस आज्ञा का पालन अवश्य करना चाहिये।

शासक—पर, यह कैसे हो सकता है ?

कुनाल—जैसे हो, वह तो तुम्हें करना ही होगा।

शासक—किंतु राजकुमार, आपके इस देवशरीर के दो नेत्र-रत्न निकालने का बल मेरे हाथों में नहीं है। हाँ, मैं अपने इस पद को त्याग कर सकता हूँ।

कुनाल—अच्छा, तो तुम मुझे इन लोगों के साथ महाराज के समीप भेज दो।

शासक ने कहा—जैसी आज्ञा।

५

पौण्ड्रवर्धन नगर में हाहाकार मचा हुआ है। नगर-निवासी प्रायः उद्विग्न हो रहे हैं। पर विशेषकर जैन लोगों ही में खलबली मची हुई है। जैन-रमणी, जिन्होंने कभी घर के बाहर पैर भी नहीं रक्खा था, छोटे शिशुओं को लिये हुए भाग रही हैं। पर जायँ कहाँ ? जिधर देखती हैं, उधर ही सशस्त्र उन्मत्त काल बौद्ध लोग उन्मत्तों की तरह दिखाई पड़ते हैं। देखो, वह स्त्री, जिसके केश परिश्रम से खुल गये हैं—गोद का शिशु अलग मचलकर रो रहा है, थककर एक वृक्ष के नीचे बैठ गई है ! अरे देखो ! दुष्ट निर्दय वहाँ भी पहुँच गये, और उस स्त्री को सताने लगे।

युवती ने हाथ जोड़कर कहा—आप लोग दुःख मत दीजिये।

फिर उसने एक-एक करके अपने सब आभूषण उतार दिये और वे दुष्ट उन सब अलंकारों को लेकर भाग गये। इधर वह स्त्री निद्रा से क्लान्त होकर उसी वृक्ष के नीचे सो गई।

उधर देखिये, वह एक रथ चला जा रहा है, और उसके पर्दे हटाकर बता रहे हैं कि उसमें स्त्री और पुरुष तीन-चार बैठे हैं। पर सारथी उस ऊँची-नीची पथरीली भूमि में भी उन लोगों की ओर बिना ध्यान दिये रथ शीघ्रता से लिये जा रहा है। सूर्य की किरणें पश्चिम में पीली हो गई हैं। चारो ओर उस पथ में शान्ति है। केवल उसी रथ का शब्द सुनाई पड़ता है, जो अभी उत्तर की ओर चला जा रहा है।

थोड़ी ही देर में वह रथ सरोवर के समीप पहुँचा और रथ के घोड़े हाँफते हुए थककर खड़े हो गये। अब सारथी भी कुछ न कर सका और उसको रथ के नीचे उतरना पड़ा।

रथ को रुका जानकर भीतर से एक पुरुष निकला और उसने सारथी से पूछा—क्यों, तुमने रथ क्यों रोक दिया ?

सारथी—अब घोड़े नहीं चल सकते।

पुरुष—तब तो फिर बड़ी विपत्ति का सामना करना होगा; क्योंकि पीछा करनेवाले उन्मत्त सैनिक आ ही पहुँचेंगे।

सारथी—तब क्या किया जाय ? (सोचकर) अच्छा, आप लोग इस समीप की कुटी में चलिये, यहाँ कोई महात्मा हैं, वह अवश्य आप लोगों को आश्रय देंगे।

पुरुष ने कुछ सोचकर सब आरोहियों को रथ पर से उतारा, और वे सब लोग उसी कुटी की ओर अग्रसर हुए।

कुटी के बाहर एक पत्थर पर एक अधेड़ मनुष्य बैठा हुआ है। उसका परिधेय वस्त्र भिक्षुओं के समान है। रथ पर के लोग उसी के सामने जाकर खड़े हुए। उन्हें देखकर वह महात्मा बोले—आप लोग कौन हैं और क्यों आये हैं ?

उसी पुरुष ने आगे बढ़कर, हाथ जोड़कर, कहा—महात्मन्, हम लोग जैन हैं और महाराज अशोक की आज्ञा से जैन लोगों का सर्वनाश किया जा रहा है। अतः हम लोग प्राण के भय से भागकर अन्यत्र जा रहे हैं। पर मार्ग में घोड़े थक गये, अब ये इस समय चल नहीं सकते। क्या आप थोड़ी देर तक हम लोगों को आश्रय दीजियेगा ?

महात्मा थोड़ी देर सोचकर बोले—अच्छा, आप लोग इसी कुटी में चले जाइये।

स्त्री-पुरुषों ने आश्रय पाया।

अभी इन लोगों को बैठे थोड़ी ही देर हुई है कि अकस्मात् अश्व-पद-शब्द ने सबको चकित और भयभीत कर दिया। देखते-देखते दस अश्वारोही उस कुटी के सामने पहुँच गये। उनमें से एक महात्मा की ओर लक्ष्य करके बोला—ओ भिक्षु, क्या तू ने अपने यहाँ भागे हुए जैन विधर्मियों को आश्रय दिया है ? समझ रख, तू हम लोगों से बहाना नहीं कर सकता; क्योंकि उनका रथ इस बात का ठीक पता दे रहा है।

महात्मा—सैनिको, तुम उन्हें लेकर क्या करोगे ? मैंने अवश्य उन दुखियों को आश्रय दिया है। क्यों व्यर्थ नर-रक्त से अपने हाथों को रञ्जित करते हो ?

सैनिक अपने साथियों की ओर देखकर बोला—यह दुष्ट भी जैन ही है, ऊपरी बौद्ध बना हुआ है; इसे भी मारो।

'इसे भी मारो' का शब्द गूँज उठा, और देखते-देखते उस महात्मा का सिर भूमि में लोटने लगा।

इस कांड को देखते ही कुटी के स्त्री-पुरुष चिल्ला उठे। उन नरपिशाचों ने एक को भी न छोड़ा! सबकी हत्या की।

अब, सब सैनिक धन खोजने लगे। मृत स्त्री-पुरुषों के आभूषण उतारे जाने लगे। एक सैनिक, जो उस महात्मा की ओर झुका था, चिल्ला उठा। सबका ध्यान उसी ओर आकर्षित हुआ। सब सैनिकों ने देखा, उसके हाथ में एक अँगूठी है, जिस पर लिखा है 'वीताशोक'!

६

महाराज अशोक के भाई, जिनका पता नहीं लगता था, वही 'वीताशोक' मारे गये! चारो ओर उपद्रव शान्त है। पौण्ड्रवर्धन नगर प्रशान्त समुद्र की तरह हो गया है।

महाराज अशोक पाटलिपुत्र के साम्राज्य-सिंहासन पर विचार-पति होकर बैठे हैं। राजसभा की शोभा तो कहते नहीं बनती। सुवर्ण-रचित बेल-बूटों की कारीगरी से जिनमें मणि-माणिक्य स्थानानुकूल बिठाये गये हैं—मौर्य-सिंहासन-मंदिर भारतवर्ष का वैभव दिखा रहा है, जिसे देखकर पारसीक सम्राट 'दारा' के सिंहासन-मंदिर को ग्राक लोग तुच्छ दृष्टि से देखते थे।

धर्माधिकार, प्राड्विवाक, महामात्य, धर्म-महामात्म्य रज्जुक, और सेनापति, सब अपने-अपने स्थान पर स्थित हैं। राजकीय तेज

का सन्नाटा सब को मौन किये है।

देखते-देखते एक स्त्री और एक पुरुष उस सभा में आये। सभास्थित सब लोगों की दृष्टि को पुरुष के अवनत तथा बड़े-बड़े नेत्रों ने आकर्षित कर लिया। किंतु सब नीरव हैं। युवक और युवती ने मस्तक झुकाकर महाराज को अभिवादन किया।

स्वयं महाराज ने पूछा—तुम्हारा नाम ?

उत्तर—कुनाल।

प्र०—पिता का नाम ?

उ०—महाराज चक्रवर्ती धर्माशोक।

सब लोग उत्कण्ठा और विस्मय से देखने लगे कि अब क्या होता है, पर महाराज का मुख कुछ भी विकृत न हुआ, प्रत्युत और भी गम्भीर स्वर से प्रश्न करने लगे—

प्र०—तुमने कोई अपराध किया है ?

उ०—अपनी समझ से तो मैंने अपराध से बचने का उद्योग किया था।

प्र०—फिर तुम किस तरह अपराधी बनाये गये ?

उ०—तक्षशिला के महासामन्त से पूछिये।

महाराज की आज्ञा होते ही शासक ने अभिवादन के उपरान्त एक पत्र उपस्थित किया, जो अशोक के कर में पहुँचा।

महाराज ने क्षण-भर में महामात्य से फिरकर पूछा—यह आज्ञा-पत्र कौन ले गया था, उसे बुलाया जाय।

पत्रवाहक भी आया, और कम्पित स्वर से अभिवादन करते हुए बोला—धर्मावतार, यह पत्र मुझे महादेवी तिष्यरक्षिता के

महल से मिला था, और आज्ञा हुई थी कि इसे शीघ्र तक्षशिला के शासक के पास पहुँचाओ।

महाराज ने शासक की ओर देखा। उसने हाथ जोड़कर कहा—महाराज, यही आज्ञापत्र लेकर गया था।

महाराज ने गम्भीर होकर अमात्य से कहा—तिष्यरक्षिता को बुलाओ।

महामात्य ने कुछ बोलने के लिये चेष्टा की, किन्तु महाराज के भृकुटिभंग ने उन्हें बोलने से निरस्त किया; अब वह स्वयं उठे और चले।

७

महादेवी तिष्यरक्षिता राजसभा में उपस्थित हुईं। अशोक ने गम्भीर स्वर से पूछा—यह तुम्हारी लेखनी से लिखा गया है? क्या उस दिन तुमने इसी कुकर्म के लिये राजमुद्रा छिपा ली थी? क्या कुनाल के बड़े-बड़े सुन्दर नेत्रों ने ही तुम्हें अपने निकलवाने की आज्ञा देने के लिये विवश किया था? अवश्य तुम्हारा ही यह कुकर्म है। अस्तु, तुम्हारी ऐसी स्त्री को पृथ्वी के ऊपर नहीं, किन्तु भीतर रहना चाहिये।

सब लोग काँप उठे। कुनाल ने आगे बढ़ घुटने टेक दिये और कहा—क्षमा।

अशोक ने गम्भीर स्वर से कहा—नहीं।

तिष्यरक्षिता उन्हीं पुरुषों के साथ गई, जो लोग उसे जीवित समाधि देनेवाले थे। महामात्य ने राजकुमार कुनाल को आसन पर बैठाया और धर्मरक्षिता महल में गई।

महामात्य ने एक पत्र और एक अँगूठी महाराज को दी। यह पौण्ड्रवर्धन के शासक का पत्र तथा वीताशोक की अँगूठी थी।

पत्र-पाठ करके और मुद्रा को देखकर वही कठोर अशोक विह्वल हो गये, और अवसन्न होकर सिंहासन पर गिर पड़े।

उसी दिन से कठोर अशोक ने हत्या की आज्ञा बन्द कर दी। स्थान-स्थान पर जीवहिंसा न करने की आज्ञा पत्थरों पर खुदवा दी गई।

कुछ ही काल के बाद महाराज अशोक ने उद्विग्न चित्त को शान्त करने के लिये भगवान् बुद्ध के प्रसिद्ध स्थानों के देखने के लिये धर्म-यात्रा की।

गुलाम

१

फूल नहीं खिलते हैं, बेले की कलियाँ मुरझाई जा रही हैं। समय में नीरद ने सींचा नहीं, किसी माली की भी दृष्टि उस ओर नहीं घूमी; अकाल में बिना खिले कुसुम-कोरक म्लान होना ही चाहता है। अकस्मात् डूबते सूर्य की पीली किरणों की आभा से चमकता हुआ एक बादल का टुकड़ा स्वर्ण-वर्षा कर गया। परोपकारी पवन उन छींटों को ढकेलकर उन्हें एक कोरक पर लाद गया। भला इतना भार वह कैसे सह सकता है! सब ढुलककर धरणी पर गिर पड़े। कोरक भी कुछ हरा हो गया।

यमुना के बीच धारा में एक छोटी, पर बहुत ही सुन्दर तरणी, मन्द पवन के सहारे धीरे-धीरे बह रही है। सामने के महल से अनेक चन्द्रमुख निकलकर उसे देख रहे हैं। चार कोमल सुन्दरियाँ डाँड़े चला रही हैं, और एक बैठी हुई छोटी सितारी बजा रही है। सामने, एक भव्य पुरुष बैठा हुआ उसकी ओर निर्निमेष दृष्टि से देख रहा है।

पाठक! यह प्रसिद्ध शाहआलम दिल्ली के बादशाह हैं। जलक्रीड़ा हो रही है।

सान्ध्य-सूर्य की लालिमा जीनत-महल के अरुण मुख-मंडल की शोभा और भी बढ़ा रही है। प्रणयी बादशाह उस आतप-मंडित मुखारविन्द की ओर सतृष्ण नयन से देख रहे हैं, जिसपर

बार-बार गर्व और लज्जा का दुबारा रङ्ग चढ़ता-उतरता है, और इसी कारण सितार का स्वर भी बहुत शीघ्र चढ़ता-उतरता है। संगीत, तार पर चढ़कर दौड़ता हुआ, व्याकुल होकर घूम रहा है; क्षण-भर भी विश्राम नहीं।

जीनत के मुखमंडल पर स्वेदबिन्दु झलकने लगे। बादशाह ने व्याकुल होकर कहा—बस करो प्यारी जीनत! बस करो! बहुत अच्छा बजाया, वाह क्या बात है! साक़ी, एक प्याला शीराजी शर्बत!

'हुजूर आया'—कहता हुआ एक सुकुमार बालक सामने आया, हाथ में पान-पात्र था। उस बालक की मुखकान्ति दर्शनीय थी। भरा प्याला छलकना चाहता था, इधर उसकी घुँघराली अलकें उसकी आँखों पर बरजोरी एक पर्दा डालना चाहती थीं। बालक प्याले को एक हाथ में लेकर जब केशगुच्छ को हटाने लगा, तो जीनत और शाहआलम दोनों चकित होकर देखने लगे। अलकें अलग हुईं। बेगम ने एक ठंढी साँस ली। शाहआलम के मुख से भी एक आह निकलना ही चाहती थी, पर उसे रोक-कर निकल पड़ा 'बेगम को दो'।

बालक ने दोनों हाथों से पान-पात्र जीनत की ओर बढ़ाया। बेगम ने उसे लेकर पान कर लिया।

नहीं कह सकते कि उस शर्बत ने बेगम को कुछ तरी पहुँचाई या गर्मी; किन्तु हृदयस्पन्दन अवश्य कुछ बढ़ गया। शाह-आलम ने झुककर कहा—एक और।

बालक विचित्र गति से पीछे हटा और थोड़ी देर में दूसरा

प्याला लेकर उपस्थित हुआ। पान-पात्र निश्शेष कर शाहे-आलम ने हाथ कुछ और फैला दिया, और बालक की ओर इंगित करके बोले—क़ादिर, जरा उँगलियाँ तो बुला दे।

बालक अदब से सामने बैठ गया और उनकी उँगलियों को हाथ में लेकर बुलाने लगा।

मालूम होता है कि जीनत को शर्बत ने कुछ ज्यादा गर्मी पहुँचाई। वह छोटे बजरे के मेहराब में से झुककर यमुना-जल छूने लगी। कलेजे के नीचे एक मखमली तकिया मसली जाने लगी, या न मालूम वही कामिनी के वक्षस्थल को पीड़न करने लगी।

शाह-आलम की उँगलियाँ, उस कोमल बाल-रवि-कर-समान स्पर्श से, कलियों की तरह चटकने लगीं। बालक की निर्निमेष दृष्टि आकाश की ओर थी। अकस्मात् बादशाह ने कहा—मीना! ख्वाजासरा से कह देना कि इस क़ादिर को अपनी खास तालीम में रखे, और उसके सुपुर्द कर देना।

एक डाँड़े चलानेवाली ने झुककर कहा—बहुत अच्छा हुज़ूर।

बेगम ने अपने सीने से तकिये को और दबा दिया; किन्तु वह कुछ न बोल सकी, दबकर रह गई।

२

उपर्युक्त घटना को बहुत दिन बीत गये। गुलाम-क़ादिर अब अच्छा युवक मालूम होने लगा। उसका उन्नत स्कन्ध, भरी-भरी बाहें और विशाल वक्षस्थल बड़े सुहावने हो गये। किन्तु कौन

कह सकता है कि वह युवक है। ईश्वरीय नियम के विरुद्ध उसका पुंस्त्व छीन लिया गया है।

क़ादिर, शाह-आलम का प्यारा गुलाम है। उसकी तूती बोल रही है, सो भी कहाँ? शाही नौबतखाने के भीतर।

दीवाने-आम में अच्छी सजधज है। आज कोई बड़ा दरबार होनेवाला है। सब पदाधिकारी अपने योग्यतानुसार वस्त्राभूषण से सजकर अपने-अपने स्थान को सुशोभित करने लगे। शाह-आलम भी तख्त पर बैठ गये। तुला-दान होने के बाद बादशाह ने कुछ लोगों का मनसब बढ़ाया और कुछ को इनाम दिया। किसी को हर्बे दिये गये; किसी की पदवी बढ़ाई गई; किसी की तनख्वाह बढ़ी।

किन्तु बादशाह यह सब करके भी तृप्त नहीं दिखाई पड़ते। उनकी निगाहें किसी को खोज रही हैं। वे इशारा कर रही हैं कि उन्हींसे काम निकल जाय, रसना को बोलना न पड़े; किन्तु करें क्या? वह हो नहीं सकता था। बादशाह ने एक तरफ देखकर कहा—गुलाम-क़ादिर!

क़ादिर अपने कमरे में कपड़े पहनकर तैयार है, केवल कमरबन्द में एक जड़ाऊ दस्ते का कटार लगाना बाकी है, जिसे बादशाह ने उसे प्रसन्न होकर दिया है। कटार लगाकर एक बार बड़े दर्पण में मुँह देखने की लालसा से वह उस ओर बढ़ा। दर्पण के सामने खड़ा होकर उसने देखा, अपरूप सौन्दर्य! किसका? अपना ही। सचमुच क़ादिर की दृष्टि अपनी आँखों पर से नहीं हटती। मुग्ध होकर वह अपना रूप देख रहा है!

उसका पुरुषोचित सुन्दर मुख-मंडल तारुण्य-सूर्य के आतप से आलोकित हो रहा है। दोनों भरे हुए कपोल प्रसन्नता से बार-बार लाल हो आते हैं, आँखें हँस रही हैं। सृष्टि सुन्दरतम होकर उसके सामने विकसित हो रही है।

प्रहरी ने आकर कहा—जहाँपनाह ने दर्बार में याद किया है।

क़ादिर चौंक उठा और उसका रंग उतर गया। वह सोचने लगा कि उसका रूप और तारुण्य कुछ नहीं है, किसी काम के नहीं। मनुष्य की सारी सम्पत्ति उससे जबर्दस्ती छीन ली गई है।

क़ादिर का जीवन भार हो उठा। निरभ्र गगन में पावस-घन घिर उठे। उसका प्राण तलमला उठा; और वह व्याकुल होकर चाहता था कि दर्पण फोड़ दे।

क्षण-भर में सारी प्रसन्नता मिट्टी में मिल गई। जीवन दुःसह हो उठा। दाँत आपस में घिस उठे और कटार भी कमर से निकलने लगा।

क़ादिर कुछ शान्त हुआ। कुछ सोचकर धीरे-धीरे दर्बार की ओर चला। बादशाह के सामने पहुँचकर यथोचित अभिवादन किया।

शाह०—क़ादिर! इतनी देर तक कहाँ रहा?

क़ादिर—जहाँपनाह! गुलाम की ख़ता माफ़ हो।

शाह०—[हँसते हुए] ख़ता कैसी क़ादिर?

क़ादिर—[जलकर] हुज़ूर, देर हुई।

शाह०—अच्छा, उसकी सजा दी जायगी।

क़ादिर—[अदब से] लेकिन हुज़ूर, मेरा भी कुछ अर्ज़ है।

बादशाह ने पूछा—क्या?

क़ादिर ने कहा—मुझे यही सजा मिले कि मैं कुछ दिनों के लिये देहली से निकाल दिया जाऊँ।

शाह-आलम ने कहा—सो तो बहुत बड़ी सज़ा है क़ादिर; ऐसा नहीं हो सकता। मैं तुम्हें कुछ इनाम देना चाहता हूँ, ताकि वह यादगार रहे, और तुम फिर ऐसा कुसूर न करो।

क़ादिर ने हाथ बाँधकर कहा—हुजूर! इनाम में मुझे छुट्टी ही मिल जाय, ताकि कुछ दिनों तक मैं अपने बूढ़े बाप की ख़िदमत कर सकूँ।

शाह-आलम—[चौंककर] उसकी ख़िदमत के लिये मेरी दी हुई जागीर काफ़ी है। सहारनपुर में उसकी आराम से गुज़रती है।

क़ादिर ने गिड़गिड़ाकर कहा—लेकिन जहाँपनाह, लड़का होकर मेरा भी कोई फ़र्ज़ है।

शाह-आलम ने कुछ सोचकर कहा—अच्छा, तुम्हें रुख़सत मिली, और यादगार की तरह तुम्हें एक-हजारी मनसब अता किया जाता है, ताकि तुम वहाँ से लौट आने में फिर देर न करो।

उपस्थित लोग 'करामात' 'हुजूर का एक़बाल और बुलन्द हो' की धुन मचाने लगे। गुलाम-क़ादिर अनिच्छा रहते उन लोगों का साथ देता था, और अपनी हार्दिक प्रसन्नता प्रकट करने की कोशिश करता था।

३

भारत के सपूत, हिन्दुओं के उज्ज्वल रत्न, छत्रपति महाराज शिवाजी ने जो अध्यवसाय और परिश्रम किया, उसका परिणाम मराठों को अच्छा मिला; और उन्होंने भी जबतक उस पूर्वनीति

को अच्छी तरह से माना, लाभ उठाया। शाह-आलम के दरबार में क्या—भारत में—आज मराठा-वीर सेंधिया ही नायक समझा जाता है। सेंधिया की विपुल वाहिनी के बल से शाह-आलम नाम-मात्र को दिल्ली के सिंहासन पर बैठे हैं। बिना सेंधिया के मंजूर किये बादशाह-सलामत रत्ती-भर हिल नहीं सकते। सेंधिया, दिल्ली और उसके बादशाह के, प्रधान रक्षक हैं। शाह-आलम का मुग़ल-रक्त सद हो चुका है।

सेंधिया आपस के झगड़े तय करने के लिये दक्खिन चला गया है। 'मन्सूर' नामक कर्मचारी ही इस समय बादशाह का प्रधान सहायक है। शाह-आलम का पूरा शुभचिन्तक होने पर भी वह हिन्दू सेंधिया की प्रधानता से भीतर-भीतर जला करता था।

जला हुआ, विद्रोह का झंडा उठाये, इसी समय, गुलाम-क़ादिर रुहेलों के साथ सहारनपुर से आकर दिल्ली के उस पार डेरा डाले पड़ा है। मन्सूर उसके लिये हर तरह से तैयार है। एक बार वह भुलावे में आकर चला गया है। अबकी बार उसकी इच्छा है कि वजारत वही करे।

बूढ़े बादशाह संगमर्मर के मीनाकारी किये हुए बुर्ज में गाव-तकिये के सहारे लेटे हुए हैं। मन्सूर सामने हाथ बाँधे खड़ा है। शाह-आलम ने भरी हुई आवाज में पूछा—क्यों मन्सूर! क्या गुलाम-क़ादिर सचमुच दिल्ली पर हमला करके तख्त छीनना चाहता है? क्या उसको इसी लिए हमने इस मरतबे पर पहुँचाया? क्या सबका आख़िरी नतीजा यही है? बोलो, साफ़ कहो। रुको मत, जिसमें कि तुम बात बना सको।

मन्सूर—जहाँपनाह! वह तो गुलाम है। फ़कत हुजूर की

क़दमबोसी हासिल करने के लिये आया है। और, उसकी तो यही अर्जी है कि हमारे आक़ा शाहंशाह-हिन्द एक काफ़िर के हाथ की पुतली न बने रहें। अगर हुक्म दें, तो क्या यह गुलाम वह काम नहीं कर सकता ?

शाह०—मन्सूर ! इसके माने ?

मन्सूर—बन्दःपरवर ! वह दिल्ली की वजारत के लिये अर्ज करता है और गुलामी में हाजिर होना चाहता है। उसे तो सेंधिया से रञ्ज है, हुजूर तो उसके मेहरबान आक़ा हैं।

शाह०—(जरा तनकर) हाँ मन्सूर, उसे हमने बचपन से पाला है, और इस लायक बनाया।

मन्सूर—(मन में) और उसे आपने ही, खुदग़रज़ी से—जो क़ाबिल-नफ़रत थी—दुनिया के किसी काम का न रक्खा; जिसके लिये वह जी से जला हुआ है।

शाह०—बोलो मन्सूर ! चुप क्यों हो ? क्या वह एहसान-फ़रामोश है ?

मन्सूर—हुजूर ! फिर, गुलाम ख़िदमत में बुलाया जावे ?

शाह०—वज़ारत देने में मुझे कोई उज्र नहीं है। वह सँभाल सकेगा ?

मन्सूर—हुजूर, अगर वह न सँभाल सकेगा, तो उसको वही झेलेगा। सेंधिया खुद उससे समझ लेगा।

शाह०—हाँ जी, सेंधिया से कह दिया जायगा कि लाचारी से उसको वजारत दी गई। तुम थे नहीं, उसने जबर्दस्ती यह काम अपने हाथ में लिया।

मन्सूर—और इससे मुसलमान रियाया भी हुजूर से खुश हो जावेगी। तो, उसे हुक्म आने का भेज दिया जाय?

शाह०—बेहतर।

४

दिल्ली के दुर्ग पर गुलाम-क़ादिर का पूर्ण अधिकार हो गया है। बादशाह के कर्मचारियों से सब काम छीन लिया गया है। रुहेलों का किले पर पहरा है। अत्याचारी गुलाम महलों की सब चीजों को लूट रहा है। बेचारी बेगमें अपमान के डर से पिशाच रुहेलों के हाथ, अपने हाथ से अपने आभूषण उतारकर, दे रही हैं। पाशविक अत्याचार की मात्रा अब भी पूर्ण नहीं हुई। दीवाने-ख़ास में सिंहासन पर बादशाह बैठे हैं, रुहेलों के साथ गुलाम-क़ादिर उसे घेरकर खड़ा है।

शाह०—गुलाम-क़ादिर, अब बस कर। मेरे हाल पर रहम कर, सब कुछ तूने कर लिया। अब मुझे क्यों नाहक परेशान करता है?

गुलाम—अच्छा इसीमें है कि अपना छिपा खजाना बता दो।

एक रुहेला—हाँ-हाँ, हमलोगों के लिये भी तो कुछ चाहिये।

शाह०—क़ादिर! मेरे पास कुछ नहीं है। क्यों मुझे तकलीफ़ देता है?

क़ादिर—मालूम होता है, सीधी उँगली से घी नहीं निकलेगा।

शाह०—मैंने तुझे इस लायक इसी लिये बनाया कि तू मेरी इस तरह बेइज्जती करे?

क़ादिर—तुम्हारे ऐसों के लिये इतनी ही सजा काफ़ी नहीं है। नहीं देखते हो कि मेरे दिल में बदले की आग जल रही है, मुझे तुमने किस काम का रक्खा ? हाय ! मेरी सारी काररवाई फजूल है, मेरा सब तुमने लूट लिया है। बदला कहता है कि तुम्हारा गोश्त मैं अपने दाँतों से नोच डालूँ।

शाह०—बस क़ादिर ! मैं अपनी ख़ता क़बूल करता हूँ। उसे माफ़ कर। या तो अपने हाथों से मुझे क़त्ल कर डाल। मगर इतनी बेइज्जती न कर।

गुलाम०—अच्छा, वह तो किया ही जायगा। मगर खजाना कहाँ है ?

शाह०—क़ादिर ! मेरे पास कुछ नहीं है।

गुलाम०—अच्छा तो उतर आएँ तख्त से, देर न करें।

शाह०—क़ादिर ! मैं इसी पर बैठा हूँ, जिस पर बैठकर तुझे हुक्म दिया करता था। आ, इसी जगह खंजर से मेरा काम तमाम कर दे।

'वही होगा' कहता हुआ नरपिशाच क़ादिर तख्त की ओर बढ़ा। बूढ़े बादशाह को तख्त से घसीटकर नीचे ले आया, और उन्हें पटककर छाती पर चढ़ बैठा। खंजर की नोक कलेजे पर रखकर कहने लगा, अब भी अपना ख़ज़ाना बताओ, तो जान सलामत बच जायगी।

शाह-आलम गिड़गिड़ाकर कहने लगे कि ऐसी जिन्दगी की जरूरत नहीं है। अब तू अपना खंजर कलेजे के पार कर।

क़ादिर—लेकिन इससे क्या होगा। अगर तुम मर जाओगे, तो मेरे कलेजे की आग किसे भुलसायेगी; इससे बेहतर है कि मुझसे जैसी चीज छीन ली गई है, उसी तरह की कोई चीज तुम्हारी भी ली जाय। हाँ, इन्हीं आँखों से मेरी खूबसूरती देखकर तुमने मुझे दुनिया के किसी काम का न रक्खा। लो, मैं तुम्हारी आँखें निकालता हूँ, जिससे मेरा कलेजा कुछ ठंडा होगा।

इतना कह क़ादिर ने कटार से शाहआलम की दोनों आँखें निकाल लीं। रोशनी की जगह उन गड्ढों से रक्त के फुहारे निकलने लगे। निकली हुई आँखों को क़ादिर की आँखें प्रसन्नता से देखने लगीं।

जहाँनारा

१

यमुना के किनारेवाले शाही महल में एक भयानक सन्नाटा छाया हुआ है, केवल बार-बार तोपों की गड़गड़ाहट और अस्त्रों की झनकार सुनाई दे रही है। वृद्ध शाहजहाँ मसनद के सहारे लेटा हुआ है, और एक दासी कुछ दवा का पात्र लिये हुए खड़ी है। शाहजहाँ अन्यमनस्क होकर कुछ सोच रहा है, तोपों की आवाज से कभी-कभी चौंक पड़ता है। अकस्मात् उसके मुख से निकल पड़ा—नहीं-नहीं, क्या वह ऐसा करेगा, क्या हमको तख्त-ताऊस से निराश हो जाना चाहिये ?

हाँ, अवश्य निराश हो जाना चाहिये।

शाहजहाँ ने सिर उठाकर कहा—कौन ? जहाँनारा ! क्या यह तुम सच कहती हो ?

जहाँनारा—(समीप आकर) हाँ जहाँपनाह ! यह ठीक है; क्योंकि आपका अकर्मण्य पुत्र 'दारा' भाग गया, और नमक-हराम 'दिलेर खाँ' क्रूर औरङ्गजेब से मिल गया, और किला उसके अधिकार में हो गया।

शाहजहाँ—लेकिन जहाँनारा ! क्या औरङ्गजेब क्रूर है ? क्या वह अपने बूढ़े बाप की कुछ इज़्ज़त न करेगा ? क्या वह मेरे जीते ही तख्त-ताऊस पर बैठेगा ?

जहाँनारा—(जिसकी आँखों में अभिमान का अश्रुजल भरा

था) जहाँपनाह ! आपके इसी पुत्रवात्सल्य ने आपकी यह अवस्था की। औरङ्गजेब एक नारकीय पिशाच है; इसका किया क्या नहीं हो सकता, एक भले कार्य को छोड़कर।

शाहजहाँ—नहीं जहाँनारा ! ऐसा मत कहो।

जहाँनारा—हाँ जहाँपनाह ! मैं ऐसा ही कहती हूँ।

शाहजहाँ—ऐसा ? तो क्या जहाँनारा ! इस बदन में मुगल-रक्त नहीं है ? क्या तू मेरी कुछ भी मदद कर सकती है ?

जहाँनारा—जहाँपनाह की जो आज्ञा हो।

शाहजहाँ—तो मेरी तलवार मेरे हाथ में दे। जब तक वह मेरे हाथ रहेगी, कोई भी तख्त-ताऊस मुझसे न छुड़ा सकेगा।

जहाँनारा आवेश के साथ 'हाँ जहाँपनाह ! ऐसा ही होगा' कहती हुई वृद्ध शाहजहाँ की तलवार उसके हाथ में देकर खड़ी हो गई। शाहजहाँ उठा और लड़खड़ाकर गिरने लगा, शाहजादी जहाँनारा ने बादशाह को पकड़ लिया, और तख्त-ताऊस के कमरे की ओर ले चली।

२

तख्त-ताऊस पर वृद्ध शाहजहाँ बैठा है, और नकाब डाले हुए जहाँनारा पास ही बैठी हुई है, और कुछ सर्दार—जो उस समय वहाँ थे—खड़े हैं; नकीब भी खड़ा है। शाहजहाँ के इशारा करते ही उसने अपने चिरभ्यस्त शब्द कहने के लिये मुँह खोला। अभी पहला ही शब्द इसके मुँह से निकला था कि उसका सिर छटककर दूर जा रहा ! सब चकित होकर देखने लगे।

जिरहबख्तर से लदा हुआ औरङ्गजेब अपनी तलवार को रूमाल से पोंछता हुआ सामने खड़ा हो गया, और सलाम करके बोला—हुजूर की तबियत नासाज़ सुनकर मुझसे न रहा गया; इसलिये हाजिर हुआ।

शाहजहाँ—(काँपकर) लेकिन बेटा! इतनी खूँरेजी की क्या जरूरत थी? अभी-अभी वह देखो, बुड्ढे नकीब की लाश लोट रही है। उफ़! मुझसे यह नहीं देखा जाता! (काँपकर) क्या बेटा, मुझे भी...(इतना कहते-कहते बेहोश होकर तख्त से झुक गया)।

औरङ्गजेब—(कड़ककर अपने साथियों से) हटाओ उस नापाक लाश को।

जहाँनारा से अब न रहा गया, और दौड़कर सुगन्धित जल लेकर वृद्ध पिता के मुख पर छिड़कने लगी।

औरङ्गजेब—(उधर देखकर) हैं! यह कौन है, जो मेरे बूढ़े बाप को पकड़े हुए है? (शाहजहाँ के मुसाहिबों से) तुम सब बड़े नामाकूल हो; देखते नहीं, हमारे प्यारे बाप की क्या हालत है, और उन्हें अभी भी पलँग पर नहीं लिटाया। (औरङ्गजेब के साथ-साथ सब तख्त की ओर बढ़े)।

जहाँनारा उन्हें यों बढ़ते देखकर फुरती से कटार निकालकर और हाथ में शाही मुहर किया हुआ कागज़ निकालकर खड़ी हो गई और बोली—देखो, इस परवाने के मुताबिक मैं तुम लोगों को हुक्म देती हूँ कि अपनी-अपनी जगह पर खड़े रहो, जब तक मैं दूसरा हुक्म न दूँ।

सब उसी कागज़ की ओर देखने लगे। उसमें लिखा था—इस शख्स का सब लोग हुक्म मानो और मेरी तरह इज्जत करो।

सब उसकी अभ्यर्थना के लिये झुक गये, स्वयं औरङ्गजेब भी झुक गया, और कई क्षण तक सब निस्तब्ध थे।

अकस्मात् औरङ्गजेब तनकर खड़ा हो गया और कड़ककर बोला—गिरफ्तार कर लो इस जादूगरनी को। यह सब झूठा फ़िसाद है; हम सिवा शाहंशाह के और किसीको नहीं मानेंगे।

सब लोग उस औरत की ओर बढ़े। जब उसने यह देखा, तो फौरन अपना नकाब उलट दिया। सब लोगों ने सिर झुका दिया, और पीछे हट गये। औरङ्गजेब ने एक बार फिर सिर नीचे कर लिया, और कुछ बड़बड़ाकर जोर से बोला—कौन, जहाँनारा! तुम यहाँ कैसे?

जहाँनारा—औरङ्गजेब! तुम यहाँ कैसे?

औरङ्गजेब—(पलटकर अपने लड़के की तरफ देखकर) बेटा! मालूम होता है कि बादशाह-बेगम का कुछ दिमाग बिगड़ गया है, नहीं तो इस बेशर्मी के साथ इस जगह पर न आतीं। तुम्हें इनकी हिफाजत करनी चाहिये।

जहाँनारा—और औरङ्गजेब के दिमाग को क्या हुआ है जो वह अपने बाप के साथ इस बेअदबी से पेश आया.......

अभी इतना उसके मुँह से निकला ही था कि शाहजादे ने फुरती से उसके हाथ से कटार निकाल लिया और कहा—मैं अदब के साथ कहता हूँ कि आप महल में चलें, नहीं तो......

जहाँनारा से यह देखकर न रहा गया। रमणी-सुलभ वीर्य

और अस्त्र, क्रन्दन और अश्रु का प्रयोग उसने किया और गिड़गिड़ाकर औरङ्गजेब से बोली—क्यों औरङ्गजेब ! तुमको कुछ भी दया नहीं है ?

औरङ्गजेब ने कहा—दया क्यों नहीं है बादशाह-बेगम ! दारा जैसे तुम्हारा भाई था, वैसा ही मैं भी तो भाई ही था, फिर तरफदारी क्यों ?

जहाँनारा—वह तो बाप का तख्त नहीं लिया चाहता था, उनके हुक्म से सल्तनत का काम चलाता था।

औरङ्गजेब—तो क्या मैं वह काम नहीं कर सकता ? अच्छा, बहस की ज़रूरत नहीं है। बेगम को चाहिये कि वह महल में जायँ।

जहाँनारा कातर दृष्टि से वृद्ध मूर्च्छित पिता को देखती हुई शाहजादे की बताई राह से जाने लगी।

३

यमुना के किनारे के एक महल में शाहजहाँ पलँग पर पड़ा है, और जहाँनारा उसके सरहाने बैठी हुई है।

जहाँनारा से जब औरङ्गजेब ने पूछा कि वह कहाँ रहना चाहती है, तो उसने केवल अपने वृद्ध और हतभागे पिता के साथ रहना स्वीकार किया, और अब वह साधारण दासी के वेश में अपना जीवन अभागे पिता की सेवा में व्यतीत करती है।

वह भड़कदार शाही पेशवाज़ अब उसके बदन पर नहीं दिखाई पड़ती, केवल सादे वस्त्र ही उसके प्रशान्त मुख की शोभा बढ़ाते हैं। चारों ओर से उस शाही महल में एक शान्ति

दिखलाई पड़ती है। जहाँनारा ने, जो कुछ उसके पास थे, सब सामान गरीबों को बाँट दिये; और अपने निज के बहुमूल्य अलङ्कार भी उसने पहनना छोड़ दिया। अब वह एक तपस्विनी ऋषिकन्या-सी हो गई! बात-बात पर दासियों पर वह झिड़की उसमें नहीं रही। केवल आवश्यक वस्तुओं से अधिक उसके रहने के स्थान में और कुछ नहीं है।

वृद्ध शाहजहाँ ने लेटे-लेटे आँख खोलकर कहा—बेटी, अब दवा की कोई जरूरत नहीं है, यादे-खुदा ही दवा है। अब तुम इसके लिये मत कोशिश करना।

जहाँनारा ने रोकर कहा—पिता, जब तक शरीर है, तब तक उसकी रक्षा करनी ही चाहिये।

शाहजहाँ कुछ न बोलकर चुपचाप पड़े रहे। थोड़ी देर तक जहाँनारा बैठी रही; फिर उठी और दवा की शीशियाँ यमुना के जल में फेंक दीं।

थोड़ी देर तक वहीं बैठी-बैठी वह यमुना का मन्द प्रवाह देखती रही। सोचती थी कि यमुना का प्रवाह वैसा ही है, मुग़ल-साम्राज्य भी तो वैसा ही है; वह शाहजहाँ भी तो जीवित हैं, लेकिन तख्त-ताऊस पर तो वह नहीं बैठते!

इसी सोच-विचार में वह तबतक बैठी थी, जबतक चन्द्रमा की किरणें उसके मुख पर नहीं पड़ीं।

४

शाहजादी जहाँनारा तपस्विनी हो गई है। उसके हृदय में वह स्वाभाविक तेज अब नहीं है, किन्तु एक स्वर्गीय तेज से वह

कान्तिमयी थी। उसकी उदारता पहले से भी बढ़ गई। दीन और दुखी के साथ उसकी ऐसी महानुभूति थी कि लोग उसे 'मूर्त्तिमती करुणा' मानते थे। उसकी इस चाल से पाषाण-हृदय औरङ्गजेब भी विचलित हुआ। उसकी स्वतंत्रता जो छीन ली गई थी, उसे फिर मिली। पर अब स्वतंत्रता का उपभोग करने के लिये उसे अवकाश ही कहाँ था? पिता की सेवा और दुखियों के प्रति सहानुभूति करने से उसे समय ही नहीं था। जिसकी सेवा के लिये सैकड़ों दासियाँ हाथ बाँधकर खड़ी रहती थीं, वह स्वयं दासी की तरह अपने पिता की सेवा करती हुई अपना जीवन व्यतीत करने लगी। वृद्ध शाहजहाँ के इङ्गित करने पर उसे उठाकर बैठाती और सहारा देकर कभी-कभी यमुना के तट तक उसे ले जाती और उसका मनोरंजन करती हुई छाया-सी बनी रहती।

वृद्ध शाहजहाँ ने इहलोक की लीला पूरी की। अब जहाँनारा को संसार में कोई कार्य नहीं है। केवल इधर-उधर उसी महल में घूमना भी अच्छा नहीं मालूम होता। उसकी पूर्व स्मृति और भी उसे सताने लगी। धीरे-धीरे वह बहुत क्षीण हो गई। बीमार पड़ी। पर, दवा कभी न पी। धीरे-धीरे उसकी बीमारी बहुत बढ़ी और उसकी दशा बहुत खराब हो गई। औरङ्गजेब ने सुना। अब उससे भी सह्य न हो सका। वह जहाँनारा के देखने के लिये गया।

एक पुराने पलँग पर, जीर्ण बिछौने पर, जहाँनारा पड़ी थी और केवल एक धीमी साँस चल रही थी। औरङ्गजेब ने देखा कि यह वही जहाँनारा है, जिसके लिये भारतवर्ष की कोई वस्तु

अलभ्य नहीं थी, जिसके बीमार पड़ने पर शाहजहाँ भी व्यग्र हो जाता था और सैकड़ों हकीम उसे आरोग्य करने के लिये प्रस्तुत रहते थे। वह इस तरह एक कोने में पड़ी है!

पाषाण भी पिघला, औरङ्गजेब की आँखें आँसू से भर आईं और वह घुटने के बल बैठ गया। समीप मुँह ले जाकर बोला—बहिन, कुछ हमारे लिये हुक्म है?

जहाँनारा ने अपनी आँखें खोल दीं और एक पुरजा उसके हाथ में दिया, जिसे झुककर औरङ्गजेब ने ले लिया। फिर पूछा—बहिन, क्या तुम हमें माफ़ करोगी?

जहाँनारा ने खुली हुई आँखों को आकाश की ओर उठा दिया। उस समय उसमें से एक स्वर्गीय ज्योति निकल रही थी और वह वैसे ही देखती रह गई। औरङ्गजेब उठा और उसने आँसू पोंछते हुए पुरजे को पढ़ा। उसमें लिखा था—

बग़ैर सवजः न पोशद् कसे मजार मरा।
कि क़ब्रपोश ग़रीबाँ हमी गयाह बस-स्त॥

मदन-मृणालिनी

विजया-दशमी का त्योहार समीप है, बालक लोग नित्य रामलीला होने से आनन्द में मग्न हैं।

हाथ में धनुष और तीर लिये हुए एक छोटा-सा बालक रामचन्द्र बनने की तैयारी में लगा हुआ है। चौदह वर्ष का बालक बहुत ही सरल और सुन्दर है।

खेलते-खेलते बालक को भोजन की याद आई, फिर कहाँ का. राम बनना और कहाँ की रामलीला! चट धनुष फेंककर दौड़ता हुआ माता के पास जा पहुँचा और उस ममता-मोहमयी माता के गले से लिपटकर—माँ! खाने को दे, माँ! खाने को दे—कहता हुआ जननी के चित्त को आनन्दित करने लगा।

जननी बालक का मचलना देखकर प्रसन्न हो रही थी और थोड़ी देर तक बैठी रहकर और भी मचलना देखा चाहती थी। उसके यहाँ एक पड़ोसिन बैठी थी, अतएव वह एकाएक उठकर बालक को भोजन देने में असमर्थ थी। सहज ही असन्तुष्ट हो जानेवाली पड़ोस की स्त्रियों का सहज क्रोधमय स्वभाव किसी से छिपा न होगा। यदि वह तत्काल उठकर चली जाती, तो पड़ोसिन क्रुद्ध होती। अतः वह उठकर बालक को भोजन देने में आनाकानी करने लगी। बालक का मचलना और भी बढ़ चला। धीरे-धीरे वह क्रोधित हो गया, दौड़कर अपनी कमान उठा लाया; तीर

चढ़ाकर पड़ोसिन को लक्ष्य किया और कहा—तू यहाँ से जा, नहीं तो मैं मारता हूँ।

दोनों स्त्रियाँ केवल हँसकर उसको मना करती रहीं। अकस्मात् वह तीर बालक के हाथ से छूट पड़ा और पड़ोसिन की गर्दन में कुछ धँस गया! अब क्या था, वह अर्जुन और अश्वत्थामा का पाशुपतास्त्र हो गया। बालक की माँ बहुत घबरा गई, उसने अपने हाथ से तीर निकाला, उसके रक्त को धोया, बहुत-कुछ ढाढ़स दिया। किन्तु घायल स्त्री का चिल्लाना-कराहना सहज में थमनेवाला नहीं था।

बालक की माँ विधवा थी, कोई उसका रक्षक न था। जब उसका पति जीता था, तब तक उसका संसार अच्छी तरह चलता था; अब जो कुछ पूँजी बच रही थी, उसी में वह अपना समय बिताती थी। ज्यों-त्यों करके उसने अपने चिर-संरक्षित धन में से पचीस रुपये उस घायल स्त्री को दिये।

वह स्त्री किसी से यह बात न कहने का वादा करके अपने घर गई। परन्तु बालक का पता नहीं, वह डर के मारे घर से निकल किसी ओर भाग गया।

माता ने समझा कि पुत्र कहीं डर से छिपा होगा, शाम तक आ ही जायगा। धीरे-धीरे सन्ध्या-पर-सन्ध्या, सप्ताह-पर-सप्ताह, मास-पर-मास बीतने लगे; परन्तु बालक का कहीं पता नहीं। शोक से माता का हृदय जर्जर हो गया, वह चारपाई पर लग गई। चारपाई ने भी उसका ऐसा अनुराग देखकर उसे अपना लिया, और फिर वह उसपर से न उठ सकी। बालक को अब कौन पूछनेवाला है!

× × ×

कलकत्ता-महानगरी के विशाल भवनों तथा राजमार्गों को आश्चर्य से देखता हुआ एक बालक एक सुसज्जित भवन के सामने खड़ा है। महीनों कष्ट झेलता, राह चलता, थकता हुआ बालक यहाँ पहुँचा है।

बालक थोड़ी देर तक यही सोचता था कि अब मैं क्या करूँ, किससे अपने कष्ट की कथा कहूँ। इतने में वहाँ धोती-कमीज पहने हुए एक सभ्य बंगाली महाशय का आगमन हुआ।

उस बालक की चौड़ी हड्डी, सुडौल बदन और सुन्दर चेहरा देखकर बंगाली महाशय रुक गये और उसे एक विदेशी समझकर पूछने लगे—

तुम्हारा मकान कहाँ है ?

ब...में।

तुम यहाँ कैसे आये ?

भागकर।

नौकरी करोगे ?

हाँ।

अच्छा, हमारे साथ चलो।

बालक ने सोचा कि सिवा इस काम के और क्या करना है, तो फिर इनके साथ ही उचित है। कहा—अच्छा, चलिये।

बङ्गाली महाशय उस बालक को घुमाते-फिराते एक मकान के द्वार पर पहुँचे। दरवान ने उठकर सलाम किया। वह बालक-सहित एक कमरे में पहुँचे, जहाँ एक नवयुवक बैठा हुआ कुछ लिख रहा था, सामने बहुत-से काग़ज़ इधर-उधर बिखरे पड़े थे।

युवक ने बालक को देखकर पूछा—बाबूजी, यह बालक कौन है ?

यह नौकरी करेगा, तुमको एक आदमी की ज़रूरत थी ही, सो इसको हम लिवा लाये हैं, अपने साथ रक्खो—बाबूजी यह कहकर घर के दूसरे भाग में चले गये।

युवक के कहने पर बालक भी अकचकाता हुआ बैठ गया। उनमें इस तरह बातें होने लगीं—

यु०—क्यों जी, तुम्हारा नाम क्या है ?

बा०—(कुछ सोचकर) मदन।

यु०—नाम तो बड़ा अच्छा है। अच्छा, कहो, तुम क्या खाओगे ? रसोई बनाना जानते हो ?

बा०—रसोई बनाना तो नहीं जानते। हाँ, कच्ची-पक्की जैसी हो, बनाकर खा लेते हैं, किन्तु...

अच्छा, सङ्कोच करने की कोई ज़रूरत नहीं है—इतना कहकर युवक ने पुकारा—कोई है ?

एक नौकर दौड़कर आया—हुजूर, क्या हुक्म है ?

युवक ने कहा—इनके भोजन करने के लिये ले आओ।

भोजन के उपरान्त बालक युवक के पास आया। युवक ने एक घर दिखाकर कहा कि उस सामने की कोठरी में सोओ और उसे अपने रहने का स्थान समझो।

युवक की आज्ञा के अनुसार बालक उस कोठरी में गया, देखा तो एक साधारण-सी चौकी पड़ी है; एक घड़े में जल, लोटा और गिलास भी रक्खा हुआ है। वह चुपचाप चौकी पर लेट गया।

लेटने पर उसे बहुत-सी बातें याद आने लगीं, एक-एक करके उसे भावना के जाल में फँसाने लगीं। बाल्यावस्था के साथी, उनके साथ खेल-कूद, राम-रावण की लड़ाई; फिर उस विजया-दशमी के दिन की घटना, पड़ोसिन के अङ्ग में तीर का धँस जाना, माता की व्याकुलता, और मार्ग के कष्ट को सोचते-सोचते उस भयातुर बालक की विचित्र दशा हो गई!

मनुष्य की मिमियाई निकालनेवाली द्वीप-निवासिनी जातियों की भयानक कहानियाँ, जिन्हें उसने बचपन में माता की गोद में पड़े-पड़े सुना था, उसे और भी डराने लगीं। अकस्मात् उसके मस्तिष्क को उद्वेग से भर देनेवाली यह बात भी समा गई कि—ये लोग तो मुझे नौकर बनाने के लिये अपने यहाँ लाये थे, फिर इतने आराम से क्यों रक्खा है? हो-न-हो वही टापू वाली बात है। बस फिर कहाँ की नींद और कहाँ का सुख, करवटें बदलने लगा! मन में यही सोचता था कि यहाँ से किसी तरह भाग चलो।

परन्तु निद्रा भी कैसी प्यारी वस्तु है! घोर दुःख के समय भी मनुष्य को यही सुख देती है। सब बातों से व्याकुल होने पर भी वह कुछ देर के लिये सो गया।

\+ \+ \+

मदन उसी घर में रहने लगा। अब उसे उतनी घबराहट नहीं मालूम होती। अब वह निर्भय-सा हो गया है। किन्तु अभी तक वह बात कभी-कभी उसे उधेड़-बुन में लगा देती है कि ये लोग मुझसे इतना अच्छा बर्ताव क्यों करते हैं और क्यों इतना

सुख देते हैं। पर इन सब बातों को वह उस समय भूल जाता है, जब 'मृणालिनी' उसकी रसोई बनवाने लगती है—देखो, रोटी जलती है, उसे उलट दो, दाल भी चला दो—इत्यादि बातें जब मृणालिनी के कोमल कण्ठ से वीणा की झंकार के समान सुनाई देती है, तब वह अपना दुःख—माता का सोच—सब भूल जाता है।

मदन है तो अबोध, किन्तु संयुक्तप्रान्तवासी होने के कारण स्पृश्यास्पृश्य का उसे बहुत ही ध्यान रहता है। वह दूसरे का बनाया भोजन नहीं करता। अतएव मृणालिनी आकर उसे बताती है और भोजन के समय हवा भी करती है।

'मृणालिनी' गृहस्वामी की कन्या है। वह देवबाला-सी जान पड़ती है। बड़ी-बड़ी आँखें, उज्ज्वल कपोल, मनोहर अङ्गभङ्गी, गुल्फविलम्बित केश-कलाप उसे और भी सुन्दरी बनने में सहायता दे रहे हैं। अवस्था तेरह वर्ष की है; किन्तु वह बहुत गम्भीर है।

नित्य साथ होने से दोनों में अपूर्व भाव का उदय हुआ है। बालक का मुख जब आग की आँच से लाल तथा आँखें धुएँ के कारण आँसुओं से भर जाती हैं, तब बालिका आँखों में आँसू भरकर, रोषपूर्वक पंखी फेंककर, कहती है—लो जी, इससे काम लो, क्यों व्यर्थ परिश्रम करते हो? इतने दिन तुम्हें रसोई बनाते हुए, मगर बनाना न आया!

तब मदन आँच लगने के सारे दुःख को भूल जाता है—तब उसकी तृष्णा और बढ़ जाती है; भोजन रहने पर भी भूख सताती है। और, सताया जाकर भी वह हँसने लगता है। मन-ही-मन

सोचता, मृणालिनी ! तुम बंग-महिला क्यों हुई ?

मदन के मन में यह बात क्यों उत्पन्न हुई ? दोनों सुन्दर थे, दोनों ही किशोर थे, दोनों संसार से अनभिज्ञ थे, दोनों के हृदय में रक्त था—उच्छ्वास था—आवेग था—विकास था, दोनों के हृदय-सिन्धु में किसी अपूर्व चन्द्र का मधुर-उज्ज्वल प्रकाश पड़ता था, दोनों के हृदय-कानन में नन्दन-पारिजात खिला था !

× × ×

जिस परिवार में बालक 'मदन' पलता था, उसके मालिक हैं 'अमरनाथ बनर्जी'। आपके नवयुवक पुत्र का नाम है 'किशोरनाथ बनर्जी'—कन्या का नाम 'मृणालिनी' और गृहिणी का नाम 'हीरामणि' है। बम्बई और कलकत्ता, दोनों स्थानों में, आपकी दूकानें थीं, जिनमें बाहरी चीजों का क्रय-विक्रय होता था; विशेष काम मोती के बनिज का था। आपका आफिस 'सीलोन' में था; वहाँ से मोती की खरीद होती थी। आपकी कुछ ज़मीन भी वहाँ थी; उससे आपकी बड़ी आय थी। आप प्रायः अपनी बम्बई की दूकान में और आपका परिवार कलकत्ते में रहता था। धन अपार था, किसी चीज़ की कमी न थी; तो भी आप एक प्रकार से चिन्तित थे !

संसार में कौन चिन्ताग्रस्त नहीं है ? पशु-पक्षी, कीट-पतंग, चेतन और अचेतन, सभी को किसी प्रकार की चिन्ता है। जो योगी हैं, जिन्होंने सब-कुछ त्याग दिया है, संसार जिनके वास्ते असार है, उन्होंने भी इसको स्वीकार किया है। यदि वे आत्म-चिन्तन न करें, तो उन्हें योगी कौन कहेगा ?

किन्तु बनर्जी महाशय की चिन्ता का कारण क्या है? सो पति-पत्नी की इस बातचीत से ही विदित हो जायगा—

अमरनाथ—किशोर तो क्वाँरा ही रहा चाहता है। अभी तक उसकी शादी कहीं पक्की नहीं हुई।

हीरामणि—सीलोन में आपके व्यापार करने तथा रहने से समाज आपको दूसरी ही दृष्टि से देख रहा है।

अ०—ऐसे समाज की मुझे कुछ पर्वाह नहीं है। मैं तो केवल लड़की और लड़के का व्याह अपनी जाति में करना चाहता था। क्या टापुओं में जाकर लोग पहले बनिज नहीं करते थे? मैंने कोई अन्य धर्म तो ग्रहण नहीं किया, फिर यह व्यर्थ का आडम्बर क्यों है? और, यदि कोई खान-पान का दोष दे, तो क्या यहाँ पर तिलक कर पूजा करनेवाले लोगों से होटल बचा हुआ है?

ही०—फिर क्या कीजियेगा? समाज तो इस समय केवल उन्हीं बगला-भगतों को परम धार्मिक समझता है!

अ०—तो फिर अब मैं ऐसे समाज को दूर ही से हाथ जोड़ता हूँ।

ही०—तो क्या ये लड़की-लड़के क्वाँरे ही रहेंगे?

अ०—नहीं, अब हमारी यह इच्छा है कि तुम-सबको लेकर उसी जगह चलें। यहाँ कई वर्ष रहते भी हुआ; किन्तु कार्य सिद्ध होने की कुछ भी आशा नहीं है। तो फिर अपना व्यापार क्यों नष्ट होने दें? इसलिये, अब तुम-सबको वहीं चलना होगा। न होगा तो 'ब्राह्म' हो जायँगे, किन्तु यह उपेक्षा अब सही नहीं जाती।

× × ×

मदन, मृणालिनी के सङ्ग से, बहुत ही प्रसन्न है। सरला 'मृणालिनी' भी प्रफुल्लित है। किशोरनाथ भी उसे बहुत ही प्यार करता है; प्रायः उसी को साथ लेकर हवा खाने के लिये जाता है। दोनों में बहुत ही सौहार्द है। मदन भी बाहर किशोरनाथ के साथ, और घर आने पर मृणालिनी की प्रेममयी वाणी से, आप्यायित रहता है।

मदन का समय सुख से बीतने लगा! किन्तु बनर्जी महाशय के सपरिवार बाहर जाने की बातों ने एक बार उसके हृदय को उद्वेगपूर्ण बना दिया। वह सोचने लगा कि मेरा क्या परिणाम होगा, क्या मुझे भी चलने के लिये आज्ञा देंगे? और, यदि ये चलने के लिये कहेंगे, तो मैं क्या करूँगा? इनके साथ जाना ठीक होगा या नहीं?

इन सब बातों को वह सोचता ही था कि इतने में किशोरनाथ ने अकस्मात् आकर उसे चौंका दिया। उसने खड़े होकर पूछा—कहिये, आप लोग किस सोच-विचार में पड़े हुए हैं? कहाँ जाने का विचार है?

क्यों, क्या तुम न चलोगे?

कहाँ?

जहाँ हम लोग जायँ।

वही तो पूछता हूँ कि आप लोग कहाँ जायँगे?

सीलोन।

तो मुझसे भी आप वहाँ चलने के लिये कहते हैं?

इसमें तुम्हारी हानि ही क्या है!

(यज्ञोपवीत दिखाकर) इसकी ओर भी तो ध्यान कीजिये !

तो क्या समुद्रयात्रा तुम नहीं कर सकते ?

सुना है कि वहाँ जाने से धर्म नष्ट हो जाता है !

क्यों ? जिस तरह तुम यहाँ भोजन बनाते हो, उसी तरह वहाँ भी बनाना।

जहाज पर भी तो चढ़ना होगा !

उसमें हर्ज ही क्या है ? लोग गङ्गासागर और जगन्नाथजी जाते समय जहाज पर नहीं चढ़ते ?

मदन अब निरुत्तर हुआ; किन्तु उत्तर सोचने लगा। इतने ही में उधर से मृणालिनी आती हुई दिखाई पड़ी। मृणालिनी को देखते ही उसके विचाररूपी मोतियों को प्रेम-हंस ने चुग लिया, और उसे उसकी बुद्धि और भी भ्रमपूर्ण जान पड़ने लगी !

मृणालिनी ने पूछा—क्यों मदन, तुम बाबा के साथ न चलोगे ?

जिस तरह वीणा की झंकार से मस्त होकर मृग स्थिर हो जाता है अथवा मनोहर वंशी की तान से झूमने लगता है, वैसे ही मृणालिनी के मधुर स्वर में मुग्ध मदन ने कह दिया—क्यों न चलूँगा।

\+ \+ \+

सारा संसार घड़ी-घड़ी-भर पर, पल-पल-भर पर, नवीन-सा प्रतीत होता है, और इससे उस विश्वयंत्र को बनानेवाले स्वतंत्र की बड़ी भारी निपुणता का पता लगता है; क्योंकि नवीनता की यदि रचना न होती, तो मानव-समाज को यह संसार और ही तरह का

भासित होता। फिर उसे किसी वस्तु की चाह न होती, इतनी तरह के व्यावहारिक पदार्थों की कुछ भी आवश्यकता न होती। समाज, राज्य और धर्म के विशेष परिवर्त्तन-रूपी पट में इसकी मनोहर मूर्त्ति और भी सलोनी देख पड़ती है। मनुष्य बहुप्रेमी क्यों हो जाता है? मानवों की प्रवृत्ति क्यों दिन-रात बदला करती है? नगर-निवासियों को पहाड़ी घाटियाँ क्यों सौन्दर्यमयी प्रतीत होती हैं? विदेश-पर्यटन में क्यों मनोरञ्जन होता है? मनुष्य क्यों उत्साहित होता है? इत्यादि प्रश्नों के उत्तर में केवल यही कहा जा सकता है कि नवीनता की प्रेरणा!

नवीनता वास्तव में ऐसी ही वस्तु है कि जिससे मदन को भारत से 'सीलोन' तक पहुँच जाना कुछ कष्टकर न हुआ!

विशाल सागर के वक्षःस्थल पर दानव-राज की तरह वह जहाज अपनी चाल और उसकी शक्ति दिखा रहा है। उसे देखकर मदन को द्रौपदी और पाण्डवों को लादे हुए घटोत्कच का ध्यान आता था!

उत्ताल तरङ्गों की कल्लोल-माला अपना अनुपम दृश्य दिखा रही है। चारों ओर जल-ही जल है, चन्द्रमा अपने पिता की गोद में क्रीड़ा करता हुआ आनन्द दे रहा है। अनन्त सागर में अनन्त आकाश-मण्डल के असंख्य नक्षत्र अपने प्रतिबिम्ब दिखा रहे हैं।

मदन तीन-चार बरस में युवक हो गया है। उसकी भावुकता बढ़ गई थी। वह समुद्र का सुन्दर दृश्य देख रहा था। अकस्मात् एक प्रकाश दिखाई देने लगा। वह उसीको देखने लगा।

उस मनोहर अरुण का प्रकाश नील जल को भी आरक्तिम

बनाने की चेष्टा करने लगा। चंचल तरंगों की लहरियाँ सूर्य की किरणों से क्रीड़ा करने लगीं। मदन उस अनन्त समुद्र को देखकर डरा नहीं, किन्तु अपने प्रेममय हृदय का एक जोड़ा देखकर और भी प्रसन्न हुआ। वह निर्भीक हृदय से उन लोगों के साथ सीलोन पहुँचा।

\+ + +

अमरनाथ के विशाल भवन में रहने से मदन को बड़ी ही प्रसन्नता है। मृणालिनी और मदन उसी प्रकार से मिलते-जुलते हैं, जैसे कलकत्ते में मिलते-जुलते थे। लवण-महासमुद्र की महिमा दोनों ही को मनोहर जान पड़ती है। प्रशान्त महासागर के तट की सन्ध्या दोनों के नेत्रों को ध्यान में लगा देती है। डूबते हुए सूर्यदेव देव-तुल्य हृदयों को संसार की गति दिखलाते हैं, अपने राग की आभा उन प्रभातमय हृदयों पर डालते हैं। दोनों ही सागर-तट पर खड़े सिन्धु की तरङ्ग-भङ्गियों को देखते हैं; फिर भी दोनों ही दोनों की मनोहर अङ्ग-भङ्गियों में भूले हुए हैं।

महासमुद्र के तट पर बहुत समय तक खड़े होकर मृणालिनी और मदन उस अनन्त का सौन्दर्य देखते थे। अकस्मात् बैंड का सुरीला राग सुनाई दिया, जो कि सिन्धु-गर्जन को भी भेद कर निकलता था।

मदन, मृणालिनी—दोनों एकाग्रचित्त हो उस ओजस्विनी कवि-वाणी को जातीय संगीत में सुनने लगे। किन्तु वहाँ कुछ दिखाई न दिया। चकित होकर वे सुन रहे थे। प्रबल वायु भी उत्ताल तरंगों को हिलाकर उनको डराता हुआ उसीकी प्रतिध्वनि

करता था। मंत्र-मुग्ध के समान सिन्धु भी अपनी तरङ्गों के घात-प्रतिघात पर चिढ़कर उन्हीं शब्दों को दुहराता है। समुद्र को स्वीकार करते देखकर अनन्त आकाश भी उसीकी प्रतिध्वनि करता है।

धीरे-धीरे विशाल सागर के हृदय को फाड़ता हुआ एक जंगी जहाज दिखाई पड़ा। मदन और मृणालिनी, दोनों ही, स्थिर दृष्टि से उसकी ओर देखते रहे। जहाज अपनी जगह पर ठहरा और इधर पोर्ट-संरक्षक ने उसपर से सैनिकों के उतरने के लिये यथोचित प्रबन्ध किया।

समुद्र की गम्भीरता, सन्ध्या की निस्तब्धता और बैंड के सुरीले राग ने दोनों के हृदय को सम्मोहित कर लिया, और वे इन्हीं सब बातों की चर्चा करने लग गये।

मदन ने कहा—मृणालिनी, यह बाजा कैसा सुरीला है!

मृणालिनी का ध्यान टूटा, सहसा उसके मुख से निकला—तुम्हारे कलकण्ठ से अधिक नहीं है।

इसी तरह दिन बीतने लगा। मदन को कुछ काम नहीं करना पड़ता था। जब-कभी उसका जी चाहता, तब वह महासागर के तट पर जाकर प्रकृति की सुषमा को निरखता और उसी में आनन्दित होता था। वह प्रायः गोता लगाकर मोती निकालने वालों की ओर देखा करता और मन-ही-मन उनकी प्रशंसा किया करता था।

मदन का मालिक भी उसको कभी कोई काम करने के लिये आज्ञा नहीं देता था। वह उसे बैठा देखकर मृणालिनी के साथ

घूमने के लिये जाने की आज्ञा देता था। उसका स्वभाव ही ऐसा सरल था कि सभी सहवासी उससे प्रसन्न रहते थे, वह भी उनसे खूब हिल-मिलकर रहता था।

\+ \+ \+

संसार भी बड़ा प्रपंचमय यंत्र है, वह अपनी मनोहरता पर आप ही मुग्ध रहता है।

एक एकान्त कमरे में बैठे हुए मृणालिनी और मदन ताश खेल रहे हैं, दोनों जी-जान से अपने-अपने जीतने की कोशिश कर रहे हैं।

इतने ही में सहसा अमरनाथ बाबू उस कोठरी में आये, उनके मुख-मण्डल पर क्रोध झलकता था। वह आते ही बोले—क्यों रे दुष्ट! तू बालिका को फुसला रहा है?

मदन तो सुनकर सन्नाटे में आ गया! उसने नम्रता के साथ खड़े होकर पूछा—क्यों पिता, मैंने क्या किया है?

अमर०—अभी पूछता ही है! तू इस लड़की को बहँकाकर अपने साथ लेकर दूसरी जगह भागना चाहता है?

मदन—बाबूजी! यह आप क्या कह रहे हैं? मुझपर आप इतना अविश्वास कर रहे हैं? किसी दुष्ट ने आपसे झूठी बात कही है।

अमर०—अच्छा, तुम यहाँ से चलो और अब से तुम दूसरी कोठरी में रहा करो; मृणालिनी को और तुमको अगर हम एक जगह अब देख पावेंगे, तो समझ रक्खो—समुद्र के गर्भ में ही तुमको स्थान मिलेगा।

मदन, अमरनाथ बाबू के पीछे, चला। मृणालिनी मुरझा गई, मदन के ऊपर अपवाद लगाना उसके सुकुमार हृदय से सहा नहीं गया। वह नव-कुसुमित पद-दलित आश्रय-विहीन माधवी-लता के समान पृथ्वी पर गिर पड़ी और लोट-लोटकर रोने लगी।

मृणालिनी ने दरवाजा भीतर से बन्द कर लिया और वहीं लोटती हुई आँसुओं से हृदय की जलन को बुझाने लगी।

कई घंटे के बाद जब उसकी माँ ने आकर किवाड़ खुलवाये, उस समय उसकी रेशमी साड़ी का आँचल भींगा हुआ, उसका मुख सूखा हुआ और आँखें लाल-लाल हो आई थीं। वास्तव में वह मदन के लिये रोई थी। इसीसे उसकी यह दशा हो गई। सचमुच संसार बड़ा प्रपंचमय है!

\+ \+ \+

दूसरे घर में रहने से मदन बहुत घबड़ाने लगा। वह अपना मन बहलाने के लिये कभी-कभी समुद्र-तट पर बैठकर गद्गद हो सूर्य-भगवान का पश्चिम दिशा से मिलना देखा करता था, और जब तक वह अस्त न हो जाते थे तब तक बराबर टकटकी लगाये देखता था। वह अपने चित्त में अनेक कल्पना की लहरें उठाकर समुद्र और अपने हृदय से तुलना भी किया करता था।

मदन का अब इस संसार में कोई नहीं है। माता भारत में जीती है या मर गई—यह भी बेचारे को नहीं मालूम! संसार की मनोहरता, आशा की भूमि, मदन के जीवन-स्रोत का जल, मदन के हृदय-कानन पूर्वक आपारिजात, मदन के हृदय-सरोवर की मनोहर मृणालिनी भी अब उससे अलग कर दी गई है। जननी,

जन्मभूमि, प्रिय, कोई भी तो मदन के पास नहीं है ! इसी से उसका हृदय आलोड़ित होने लगा, और वह अनाथ बालक ईर्ष्या से भरकर अपने अपमान की ओर ध्यान देने लगा। उसको भली भाँति विश्वास हो गया कि इस परिवार के साथ रहना ठीक नहीं है; जब इन्होंने मेरा तिरस्कार किया, तो अब इन्हीं के आश्रित होकर क्यों रहूँ ?

यह सोचकर उसने अपने चित्त में कुछ निश्चय किया और कपड़े पहनकर समुद्र की ओर घूमने के लिये चल पड़ा। राह में वह अपनी उधेड़-बुन में चला जाता था कि किसी ने पीठ पर हाथ रक्खा। मदन ने पीछे देखकर कहा—आह, आप हैं किशोर बाबू !

किशोरनाथ ने हँसकर कहा—कहाँ बगदादी ऊँट की तरह भागे जाते हो ?

कहीं तो नहीं, यही समुद्र की ओर जा रहा हूँ।

समुद्र की ओर क्यों ?

शरण माँगने के लिये !

यह बात मदन ने डबडबाई हुई आँखों से किशोर की ओर देखकर कही।

किशोर ने रूमाल से मदन के आँसू पोंछते-पोंछते कहा—मदन, हम जानते हैं कि उस दिन बाबूजी ने जो तिरस्कार किया था, उससे तुमको बहुत दुःख है। मगर सोचो तो, इसमें दोष किसका है ? यदि तुम उस रोज मृणालिनी को बहँकाने का उद्योग न करते, तो बाबूजी तुमपर क्यों अप्रसन्न होते ?

अब तो मदन से नहीं रहा गया। उसने क्रोध से कहा—कौन दुष्ट उस देवबाला पर झूठा अपवाद लगाता है? और मैंने उसे बहँकाया है? इस बात का कौन साक्षी है? किशोर बाबू! आप लोग मालिक हैं, जो चाहें सो कहिये। आपने पालन किया है; इसलिये, यदि आप आज्ञा दें तो 'मदन' समुद्र में भी कूद पड़ने के लिये तैयार है; मगर अपवाद और अपमान से बचाये रहिये।

कहते-कहते मदन का मुख क्रोध से लाल हो आया, आँखों में आँसू भर आये, उसके आकार से उस समय दृढ़ प्रतिज्ञा झलकती थी।

किशोर ने कहा—इस बारे में विशेष हम कुछ नहीं जानते, केवल माँ के मुख से सुना था कि जमादार ने बाबूजी से तुम्हारी निन्दा की है और इसीसे वह तुमपर बिगड़े हैं।

मदन ने कहा—आप लोग अपनी बाबूगीरी में भूले रहते हैं और ये बेईमान आपका सब माल खाते हैं। मैंने उस जमादार को मोती निकालने वालों के हाथ मोती बेचते देखा; मैंने पूछा—क्यों, तुमने मोती कहाँ पाया? तब उसने गिड़गिड़ाकर, पैर पकड़कर, मुझसे कहा—बाबूजी से न कहियेगा। मैंने उसे डाँटकर फिर ऐसा काम न करने के लिये कहकर छोड़ दिया, आप लोगों से नहीं कहा। इसी कारण वह ऐसी चाल चलता है और आप लोगों ने भी बिना सोचे-समझे उसकी बात पर विश्वास कर लिया है।

यों कहते-कहते मदन उठकर खड़ा हो गया। किशोर ने उसका हाथ पकड़कर बैठाया और आप भी बैठकर कहने लगा—

मदन, घबड़ाओ मत, थोड़ी देर बैठकर हमारी बात सुनो। हम उसको दण्ड देंगे और तुम्हारा अपवाद भी मिटावेंगे। मगर हम एक बात जो कहते हैं, उसे ध्यान देकर सुनो। मृणालिनी अब बालिका नहीं है, और तुम भी बालक नहीं हो। तुम्हारे उसके जैसे भाव हैं, सो भी हमसे छिपे नहीं हैं। फिर ऐसी जगह पर हम तो यही चाहते हैं कि तुम्हारा और मृणालिनी का ब्याह हो जाय।

\+ + +

मदन ब्याह का नाम सुनकर चौंक पड़ा, और मन में सोचने लगा कि यह कैसी बात? कहाँ हम युक्तप्रान्त-निवासी अन्य-जातीय, और कहाँ ये बंगाली ब्राह्मण, फिर ब्याह किस तरह हो सकता है! हो-न-हो ये मुझे भुलावा देते हैं। क्या मैं इनके साथ अपना धर्म नष्ट करूँगा? क्या इसी कारण ये लोग मुझे इतना सुख देते हैं और खूब खुलकर मृणालिनी के साथ घूमने-फिरने और रहने देते थे? मृणालिनी को मैं जी से चाहता हूँ, और जहाँ तक देखता हूँ 'मृणालिनी' भी मुझसे कपट-प्रेम नहीं करती। किन्तु यह ब्याह नहीं हो सकता; यद्यपि इसमें धर्म और अधर्म दोनों का डर है। धर्म का निर्णय करने की मुझमें शक्ति नहीं है। मैंने ऐसा ब्याह होते न देखा है और न सुना है, फिर कैसे यह ब्याह करूँ?

इन्हीं बातों को सोचते-सोचते बहुत देर हो गई। जब मदन को यह सुन पड़ा कि "अच्छा, सोचकर हमसे कहना," तब वह चौंक पड़ा और देखा तो किशोरनाथ जा रहा है।

मदन ने किशोरनाथ के जाने पर कुछ विशेष ध्यान नहीं दिया और फिर अपने विचारों के सागर में मग्न हो गया।

फिर मृणालिनी का ध्यान आया, हृदय धड़कने लगा। मदन की चिन्ताशक्ति का वेग रुक गया और उसके मन में यही समाया कि ऐसे धर्म को मैं दूर ही से हाथ जोड़ता हूँ! मृणालिनी—प्रेमप्रतिमा मृणालिनी—को मैं नहीं छोड़ सकता।

मदन इसी मन्तव्य को स्थिर कर, समुद्र की ओर मुख कर, उसकी गम्भीरता निहारने लगा।

वहाँ पर कुछ धनी लोग पैसा फेंककर उसे समुद्र से ले आने का तमाशा देख रहे थे। मदन ने सोचा कि प्रेमियों का जीवन 'प्रेम' है और सज्जनों का अमोघ धन 'धर्म' है। ये लोग अपने प्रेम-जीवन की पर्वाह न कर धर्म-धन को बटोरते हैं और फिर इनके पास जीवन और धन दोनों चीजें दिखाई पड़ती हैं। तो क्या मनुष्य इनका अनुकरण नहीं कर सकता? अवश्य कर सकता है। प्रेम ऐसी तुच्छ वस्तु नहीं है कि धर्म को हटाकर उसके स्थान पर आप बैठे। प्रेम महान है, प्रेम उदार है। प्रेमियों को भी वह उदार और महान बनाता है। प्रेम का मुख्य अर्थ है 'आत्मत्याग'। तो क्या मृणालिनी से ब्याह कर लेना ही प्रेम में गिना जायगा? नहीं-नहीं, वह घोर स्वार्थ है। मृणालिनी को मैं जन्म-भर प्रेम से अपने हृदय-मन्दिर में बिठाकर पूजूँगा, उसकी सरल प्रतिमा को पङ्क में न लपेटूँगा। परन्तु ये लोग जैसा बर्ताव करते हैं, उससे सम्भव है कि मेरे विचार पलट जायँ। इसलिये अब इन लोगों से दूर रहना ही उचित है।

मदन इन्हीं बातों को सोचता हुआ लौट आया, और जो अपना मासिक वेतन जमा किया था, वह—तथा कुछ कपड़े आदि आवश्यक सामान—लेकर वहाँ से चला गया। जाते समय उसने एक पत्र लिखकर वहीं छोड़ दिया।

जब बहुत देर तक लोगों ने मदन को नहीं देखा, तो चिन्तित हुए। खोज करने से उनको मदन का पत्र मिला, जिसे किशोरनाथ ने पढ़ा और पढ़कर उसका मर्म पिता को समझा दिया।

पत्र का भाव समझते ही उनकी सब आशा निर्मूल हो गई। उन्होंने कहा—किशोर, देखो, हमने सोचा था कि मृणालिनी किसी कुलीन हिन्दू को समर्पित हो, परन्तु वह नहीं हुआ। इतना व्यय और परिश्रम, जो मदन के लिये किया गया, सब व्यर्थ हुआ। अब वह कभी मृणालिनी से ब्याह नहीं करेगा, जैसा कि उसके पत्र से विदित होता है।

आपके उस व्यवहार ने उसे और भी भड़का दिया, अब वह कभी ब्याह न करेगा।

मृणालिनी का क्या होगा?

जो उसके भाग्य में है!

क्या जाते समय मदन ने मृणालिनी से भी भेंट नहीं की?

पूछने से मालूम होगा।

इतना कहकर किशोर 'मृणालिनी' के पास गया। मदन उससे भी नहीं मिला था। किशोर ने आकर पिता से सब हाल कह दिया।

अमरनाथ बहुत ही शोकग्रस्त हुए। बस उसी दिन से उनकी चिन्ता बढ़ने लगी। क्रमशः वह नित्य ही मद्य-सेवन करने लगे।

वह तो प्रायः अपनी चिन्ता दूर करने के लिये मद्य-पान करते थे, किन्तु उसका फल उलटा हुआ—उनकी दशा और भी बुरी हो चली; यहाँ तक कि वह सब समय पान करने लगे, काम-काज देखना-भालना छोड़ दिया।

नवयुवक 'किशोर' बहुत चिन्तित हुआ; किन्तु वह धैर्य के साथ सांसारिक कष्ट सहने लगा।

मदन के चले जाने से मृणालिनी को बड़ा कष्ट हुआ। उसे यह बात और भी खटकती थी कि मदन जाते समय उससे क्यों नहीं मिला। वह यह नहीं समझती थी कि मदन यदि जाते समय उससे मिलता, तो जा नहीं सकता था।

मृणालिनी बहुत विरक्त हो गई। संसार उसे सूना दिखाई देने लगा। किन्तु वह क्या करे? उसे अपनी मानसिक व्यथा सहनी ही पड़ी!

\+ \+ \+

मदन ने अपने एक मित्र के यहाँ जाकर डेरा डाला। वह भी मोती का व्यापार करता था। बहुत सोचने-विचारने के उपरान्त उसने भी मोती का ही व्यवसाय करना निश्चित किया।

मदन नित्य सन्ध्या के समय, मोती के बाजार में जा, मछुए लोग जो अपने मेहनताने में मिली हुई मोतियों की सीपियाँ बेचते थे—उनको खरीदने लगा; क्योंकि इसमें थोड़ी पूँजी से अच्छी तरह काम चल सकता था। ईश्वर की कृपा से उसको नित्य विशेष लाभ होने लगा।

संसार में मनुष्य की अवस्था सदा बदलती रहती है। वही मदन, जो तिरस्कार पाकर दासत्व छोड़ने पर लक्ष्यभ्रष्ट हो गया था, अब एक प्रसिद्ध व्यापारी बन गया।

मदन इस समय सम्पन्न हो गया। उसके यहाँ अच्छे-अच्छे लोग मिलने-जुलने आने लगे। उसने नदी के किनारे एक बहुत सुन्दर बँगला बनवा लिया है; उसके चारों ओर सुन्दर बगीचा भी है। व्यापारी लोग उत्सव के अवसरों पर उसको निमंत्रण देते हैं; वह भी अपने यहाँ कभी-कभी उन लोगों को निमंत्रित करता है। संसार की दृष्टि में वह बहुत सुखी था, यहाँ तक कि बहुत लोग उससे डाह करने लगे। सचमुच संसार बड़ा आडम्बर-प्रिय है!

\+ \+ \+

मदन सब प्रकार के शारीरिक सुख भोग करता था, पर उसके चित्त-पट पर किसी रमणी की मलिन छाया निरन्तर अंकित रहती थी; जो उसे कभी-कभी बहुत कष्ट पहुँचाती थी। प्रायः वह उसे विस्मृति के जल से धो डालना चाहता था। यद्यपि वह चित्र किसी साधारण कारीगर का अंकित किया हुआ नहीं था कि एकदम लुप्त हो जाय, तथापि वह बराबर उसे मिटा डालने की ही चेष्टा करता था।

अकस्मात् एक दिन, जब सूर्य की किरणें सुवर्ण-सी सु-वर्ण-आभा धारण किये हुए थीं, नदी का जल मौज में बह रहा था; उस समय मदन किनारे खड़ा हुआ स्थिर भाव से नदी की शोभा निहार रहा था। उसको वहाँ कई-एक सुसज्जित जल-यान देख पड़े। उसका चित्त, न जाने क्यों, उत्कण्ठित हुआ। अनुसन्धान

करने पर पता लगा कि वहाँ वार्षिक जल-विहार का उत्सव होता है, उसीमें लोग जा रहे हैं।

मदन के चित्त में भी उत्सव देखने की आकांक्षा हुई। वह भी अपनी नाव पर चढ़कर उसी ओर चला। कल्लोलिनी की कल्लोलों में हिलती हुई वह छोटी-सी सुसज्जित तरी चल दी।

मदन उस स्थान पर पहुँचा, जहाँ नावों का जमाव था। सैकड़ों बजड़े और नौकाएँ अपने नीले-पीले, हरे-लाल निशान उड़ाती हुई इधर-उधर घूम रही हैं। उनपर बैठे हुए मित्र लोग आपस में आमोद-प्रमोद कर रहे हैं। कामिनियाँ अपने मणिमय अलङ्कारों की प्रभा से उस उत्सव को आलोकमय किये हुई हैं।

मदन भी अपनी नाव पर बैठा हुआ एकटक इस उत्सव को देख रहा है। उसकी आँखें जैसे किसी को खोज रही हैं। धीरे-धीरे सन्ध्या हो गई। क्रमशः एक, दो, तीन तारे दिखाई दिये। साथ ही, पूर्व की तरफ, ऊपर को उठते हुए गुब्बारे की तरह, चन्द्रबिम्ब दिखाई पड़ा। लोगों के नेत्रों में आनन्द का उल्लास छा गया। इधर दीपक जल गये। मधुर संगीत, शून्य की निस्तब्धता में, और भी गूँजने लगा। रात के साथ ही आमोद-प्रमोद की मात्रा बढ़ी।

परन्तु मदन के हृदय में सन्नाटा छाया हुआ है। उत्सव के बाहर वह अपनी नौका को धीरे-धीरे चला रहा है। अकस्मात् कोलाहल सुनाई पड़ा, वह चौंककर उधर देखने लगा। उसी समय कोई चार-पाँच हाथ दूर एक काली-सी चीज दिखाई दी। अस्त हो रहे चन्द्रमा का प्रकाश पड़ने से कुछ वस्त्र भी दिखाई

देने लगा। वह बिना कुछ सोचे-समझे ही जल में कूद पड़ा और उसी वस्तु के साथ बह चला।

उषा की आभा पूर्व में दिखाई पड़ रही है। चन्द्रमा की मलिन ज्योति तारागण को भी मलिन कर रही है।

तरंगों से शीतल दक्षिण-पवन धीरे-धीरे संसार को निद्रा से जगा रहा है। पक्षी भी कभी-कभी बोल उठते हैं।

निर्जन नदी-तट में एक नाव बँधी है, और बाहर एक सुकुमारी सुन्दरी का शरीर अचेत-अवस्था में पड़ा हुआ है। एक युवक सामने बैठा हुआ उसे होश में लाने का उद्योग कर रहा है। दक्षिण-पवन भी उसे इस शुभ काम में बहुत सहायता दे रहा है।

सूर्य की पहली किरण का स्पर्श पाते ही सुन्दरी के नेत्र-कमल धीरे-धीरे विकसित होने लगे। युवक ने ईश्वर को धन्यवाद दिया और झुककर उस कामिनी से पूछा—मृणालिनी! अब कैसी हो?

मृणालिनी ने नेत्र खोलकर देखा। उसके मुखमण्डल पर हर्ष के चिह्न दिखाई पड़े। उसने कहा—प्यारे मदन, अब अच्छी हूँ।

प्रणय का भी वेग कैसा प्रबल है! यह किसी महासागर की प्रचण्ड आँधी से कम प्रबलता नहीं रखता। इसके झोंक में मनुष्य की जीवन-नौका असीम तरंगों से घिरकर प्रायः कूल को नहीं पाती, अलौकिक आलोकमय अन्धकार में प्रणयी अपनी प्रणय-तरी पर आरोहण कर उसी आनन्द के महासागर में घूमना पसंद करता है, कूल की ओर जाने की इच्छा भी नहीं करता।

इस समय मदन और मृणालिनी दोनों की आँखों से आँसुओं

की धारा धीरे-धीरे बह रही है। चंचलता का नाम भी नहीं है। कुछ बल आने पर दोनों उस नाव में जा बैठे।

मदन ने मल्लाहों को पास के गाँव से दूध या और कुछ भोजन की वस्तु लाने के लिये भेजा। फिर दोनों ने बिछुड़ने के उपरान्त की सब कथा परस्पर कह सुनाई।

मृणालिनी कहने लगी—भैया किशोरनाथ से मैं तुम्हारा सब हाल सुना करती थी। पर वह कहा करते थे कि तुमसे मिलने में उनको संकोच होता है। इसका कारण उन्होंने कुछ नहीं बतलाया। मैं भी हृदय पर पत्थर रखकर तुम्हारे प्रणय को आज तक स्मरण कर रहा हूँ।

मदन ने बात टालकर पूछा—मृणालिनी, तुम जल में कैसे गिरी?

मृणालिनी ने कहा—मुझे बहुत उदास देख भैया ने कहा, चलो तुम्हें एक तमाशा दिखलावें, सो मैं भी आज यहाँ मेला देखने आई। कुछ कोलाहल सुनकर मैं नाव पर खड़ी हो देखने लगी। दो नाव वालों में झगड़ा हो रहा था। उन्हीं के झगड़े में हाथापाई में नाव हिल गई और मैं गिर पड़ी। फिर क्या हुआ, सो मैं कुछ नहीं जानती।

इतने में दूर से एक नाव आती हुई दिखाई पड़ी, उसपर किशोरनाथ था। उसने मृणालिनी को देखकर बहुत हर्ष प्रकाश किया, और सब लोग मिलकर बहुत आनन्दित हुए।

बहुत कुछ बातचीत होने के उपरान्त मृणालिनी और किशोर दोनों ने मदन के घर चलना स्वीकार किया। नावें नदी-तट पर

स्थित मदन के घर की ओर बढ़ीं। उस समय मदन को एक दूसरी ही चिन्ता थी।

भोजन के उपरान्त किशोरनाथ ने कहा—मदन, हम अब भी तुमको छोटा भाई ही समझते हैं; पर तुम शायद हमसे कुछ रुष्ट हो गये हो।

मदन ने कहा—भैया, कुछ नहीं। इस दास से जो कुछ ढिठाई हुई हो, उसे क्षमा करना; मैं तो आपका वही 'मदन' हूँ।

इसी तरह की बहुत-सी बातें होती रहीं, और फिर दूसरे दिन किशोरनाथ मृणालिनी को साथ लेकर अपने घर गया।

\+ \+ \+

अमरनाथ बाबू की अवस्था बड़ी शोचनीय है। वह एक प्रकार से मद्य के नशे में चूर रहते हैं, काम-काज देखना सब छोड़ दिया है। अकेला किशोरनाथ काम-काज सँभालने के लिये तत्पर हुआ, पर उसके व्यापार की दशा अत्यन्त शोचनीय होती गई, और उसके पिता का स्वास्थ्य भी बिगड़ चला। क्रमशः उसको चारों ओर अंधकार दिखाई देने लगा।

संसार की कैसी विलक्षण गति है! जो बाबू अमरनाथ एक समय सारे सीलोन में प्रसिद्ध व्यापारी गिने जाते थे, और व्यापारी लोग जिनसे सलाह लेने के लिये तरसते थे, वही अमरनाथ इस समय कैसी अवस्था में हैं! कोई उनसे मिलने भी नहीं आता!

किशोरनाथ एक दिन अपने आफिस में बैठा कार्य देख रहा था। अकस्मात् मृणालिनी भी उसी स्थान में आ गई और एक कुर्सी खींचकर बैठ गई। उसने किशोर से कहा—क्यों भैया,

पिताजी की कैसी अवस्था है ? काम-काज की भी दशा अच्छी नहीं है, तुम भी चिन्ता से व्याकुल रहते हो; यह क्या है ?

किशोर—बहन, कुछ न पूछो, पिताजी की अवस्था तो तुम देख ही रही हो। काम-काज की अवस्था भी अत्यन्त शोचनीय हो रही है। पचास लाख रुपये के लगभग बाजार का देना है; और आफिस का रुपया सब बाजार में फँस गया है, जो कि काम देखे-भाले बिना पिताजी की अस्वस्थता के कारण दब-सा गया है। इसी सोच में बैठा हुआ हूँ कि ईश्वर क्या करेंगे !

मृणालिनी भयातुरा हो गई। उसके नेत्रों से आँसुओं की धारा बहने लगी। किशोर उसे समझाने लगा; फिर बोला—केवल एक ईमानदार कर्मचारी अगर काम-काज की देख-भाल किया करता, तो यह अवस्था न होती। आज यदि मदन होता, तो हमलोगों की यह दशा न होती।

मदन का नाम सुनते ही मृणालिनी कुछ विवर्ण हो गई और उसकी आँखों में आँसू भर आये। इतने में दरबान ने आकर कहा—सरकार, एक रजिस्ट्री चिट्ठी मृणालिनी-देवी के नाम से आई है, डाकिया बाहर खड़ा है।

किशोर ने कहा—बुला लाओ।

किशोर ने वह रजिस्ट्री लेकर खोली। उसमें एक पत्र और एक स्टाम्प का कागज था। देखकर किशोर ने मृणालिनी के आगे फेंक दिया। मृणालिनी ने फिर वह पत्र किशोर के हाथ में देकर पढ़ने के लिये कहा। किशोर पढ़ने लगा—

"मृणालिनी !

आज मैं तुमको पत्र लिख रहा हूँ। आशा है कि तुम इसे ध्यान देकर पढ़ोगी। मैं एक अनजाने स्थान का रहनेवाला कंगाल के भेष में तुमसे मिला और तुम्हारे परिवार में पालित हुआ। तुम्हारे पिता ने मुझे आश्रय दिया, और मैं सुख से तुम्हारा मुख देखकर दिन बिताने लगा। पर दैव को वह भी ठीक न जँचा ! अच्छा, जैसी उसकी इच्छा ! पर मैं तुम्हारे परिवार को सदा स्नेह की दृष्टि से देखता हूँ। बाबू अमरनाथ के कहने-सुनने का मुझे कुछ ध्यान भी नहीं है, मैं उसे आशीर्वाद समझता हूँ। मेरे चित्त में उसका तनिक भी ध्यान नहीं है, पर केवल पश्चात्ताप यह है कि मैं उनसे बिना कहे-सुने चला आया। अच्छा, इसके लिये उनसे क्षमा माँग लेना, और भाई किशोरनाथ से भी मेरा यथोचित अभिवादन कह देना।

अब कुछ आवश्यक बातें मैं लिखता हूँ; उन्हें ध्यान से पढ़ो। जहाँ तक सम्भव है, उनके करने में तुम आगा-पीछा न करोगी— यह मुझे विश्वास है। मुझे तुम्हारे परिवार की दशा अच्छी तरह विदित है, मैं उसे लिखकर तुम्हारा दुःख नहीं बढ़ाना चाहता। सुनो, यह एक 'विल' है, जिसमें मैंने अपनी सब 'सीलोन' की सम्पत्ति तुम्हारे नाम लिख दी है। वह तुम्हारी ही है, उसे लेने में तुमको कुछ संकोच न करना चाहिये। वह सब तुम्हारे ही रुपये का लाभ है। जो धन मैं वेतन में पाता था, वही मूल कारण है। अस्तु, यह मूल-धन, लाभ और ब्याज सहित, तुमको लौटा दिया जाता है। इसे अवश्य स्वीकार करना; और स्वीकार करो या न

करो, अब सिवा तुम्हारे इसका स्वामी कौन है ? क्योंकि मैं भारतवर्ष से जिस रूप में आया था, उसी रूप में लौटा जा रहा हूँ। मैं इस पत्र को लिखकर तब भेजता हूँ, जब घर से निकलकर जहाज को रवाना हो चुका हूँ। अब तुमसे भेंट भी नहीं हो सकती। तुम यदि आओ भी, तो उस समय मैं जहाज पर होऊँगा। तुमसे मेरी केवल यही प्रार्थना है कि 'तुम मुझे भूल जाना'।

—मदन"

यह पत्र पढ़ते ही मृणालिनी की और किशोरनाथ की अवस्था दूसरी ही हो गई। मृणालिनी ने कातर स्वर से कहा—भैया, क्या समुद्र-तट तक चल सकते हो ?

किशोरनाथ ने खड़े होकर कहा—अवश्य।

बस तुरन्त ही एक गाड़ी पर सवार होकर दोनों समुद्र-तट की ओर चले। ज्योंही वे पहुँचे, त्योंही जहाज़ तट छोड़ चुका था। उस समय व्याकुल होकर मृणालिनी की आँखें किसी को खोज रही थीं। किन्तु अधिक खोज नहीं करनी पड़ी।

किशोर और मृणालिनी दोनों ने देखा कि गेरुए रंग का कपड़ा पहने हुए एक व्यक्ति दोनों को हाथ जोड़े हुए जहाज पर खड़ा है, और जहाज शीघ्रता के साथ समुद्र के बीच में चला जा रहा है !

मृणालिनी ने देखा कि बीच में अगाध समुद्र है !

कानन-कुसुम

[संशोधित, संवर्द्धित एवं सुसज्जित
तृतीय संस्करण]

'प्रसाद' जी की मनोहर कविताओं का यह सुपरिष्कृत संग्रह तीसरी बार बड़ी सजधज से छपा है। इसकी भावमयी कविताएँ बड़ी ही रसीली और चमत्कारपूर्ण हैं। इस कविता-संग्रह की सर्वाङ्गसुन्दरता पर आप अवश्य ही मुग्ध हो रहेंगे।

सजिल्द, मूल्य १)

पुस्तक-भंडार, लहेरियासराय, पटना-४